RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2019-2021

आईसेक्ट पब्लिकेशन

ज्ञान-विज्ञान, कौशल विकास तथा कला-साहित्य पर
हिंदी, अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओं में पुस्तकों और
पत्रिकाओं का राष्ट्रीय प्रकाशन

सभी लेखकों के लिए प्रस्तुत है आईसेक्ट पब्लिकेशन की

स्व-प्रकाशन योजना

हिंदी भाषा, साहित्य एवं विज्ञान की विभिन्न विधाओं में पुस्तकों के प्रकाशन में आने वाली कठिनाइयों को देखते हुए आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल ने लेखकों के लिए स्व-प्रकाशन योजना एक अनूठे उपक्रम के रूप में शुरू की है।

जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक, अनूदित, संपादित रचनाओं का पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है, वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज के एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल से संपर्क करें।

आईसेक्ट पब्लिकेशन से पुस्तक प्रकाशन के लाभ ही लाभ

- प्रकाशित पुस्तक आईसेक्ट पब्लिकेशन की पुस्तक सूची में शामिल की जायेगी।
- पुस्तक, बिक्री के लिये सुप्रसिद्ध स्टॉलों एवं मेलों आदि में उपलब्ध रहेगी।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने का प्रयत्न किया जायेगा।
- प्रकाशित पुस्तक, शहरों व कस्बों में स्थापित वनमाली सृजनपीठ के सृजन केन्द्रों में पठन-पाठन और चर्चा के लिए भिजवाई जायेगी।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद-चर्चा आदि की व्यवस्था की जा सकेगी।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, आईसेक्ट ऑनलॉइन आदि) पर भी बिक्री के लिये प्रदर्शित की जायेगी।

सुरुचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ● नयनाभिराम पेपर बैक में

कुल बिक्री के आधार पर वर्ष में एक बार नियमानुसार रॉयल्टी भी

पांडुलिपि किसी भी विधा में स्वीकार

आईसेक्ट पब्लिकेशन, आपका पब्लिकेशन

आप स्वयं पधारें या संपर्क करें

- प्रकाशन अधिकारी, आईसेक्ट पब्लिकेशन : 25/ए, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल-462011, फोन- 0755-4923952, मो. 8818883165, 9582623368
- अध्यक्ष, वनमाली सृजनपीठ : 25/ए, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल-462011 फोन- 0755-4923952, मो. 9425014166,
- E-mail : aisectpublications@aisect.org

प्रेषक : मुकेश वर्मा, प्रधान संपादक
'समावर्तन' हिन्दी मासिक
माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन-456010

पुस्त–प्रेष्य

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

बारह वर्षों से अनवरत प्रकाशित 144 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

वर्ष 12 ■ अंक 12 ■ पूर्णांक 144 ■ मार्च–2020 ■ ₹ 150

सरोकार

इतिहास लेखन में तथ्यों के साथ
घटाव-बढ़ाव नहीं होना चाहिए
- डॉ.रघुबीर सिंह

अभिमुख : रमेश दवे

अनन्तिम : मुकेश वर्मा

मेरा नमन : अजय भट्टाचार्य

रेखांकित : जसिंता केरकेट्टा की कविताएँ

चयन : निरंजन श्रोत्रिय

कविताएँ : धर्मपाल, महेन्द्र जैन, रश्मि रमानी, अशोक गीते

लघुकथाएँ : योगेन्द्रनाथ शुक्ल

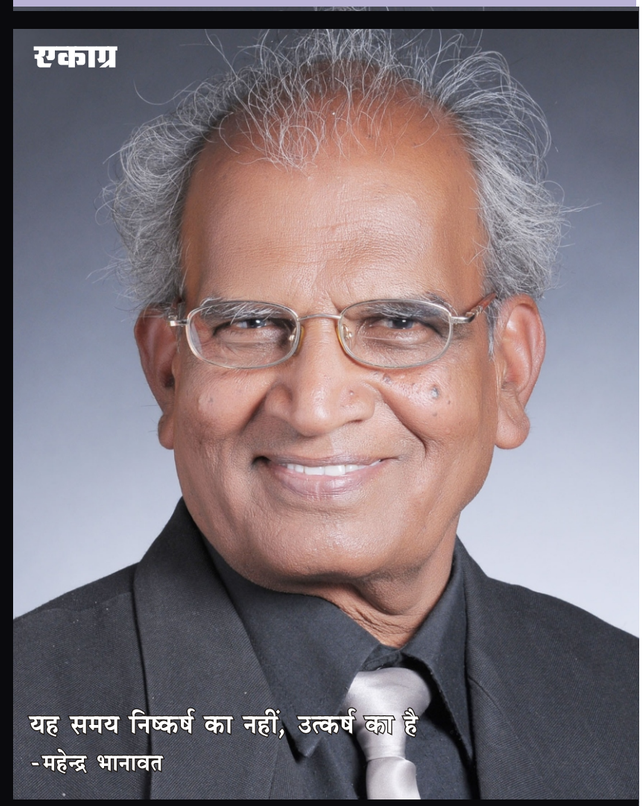

एकाग्र

यह समय निष्कर्ष का नहीं, उत्कर्ष का है
-महेन्द्र भानावत

विशेष आलेख :

समावर्तन के बारह वर्ष :

एक गौरवमयी अविराम यात्रा : श्रीराम दवे

समकाल : कथाकाल

कविता वर्मा की कहानी : कछु अकथ कहानी

चयन : मुकेश वर्मा

प्रथम पृष्ठ, वीक्षा, साहित्यिक हलचल

AISECT™
GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group
CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

AJEE
AISECT GROUP OF UNIVERSITIES
JOINT ENTRANCE EXAM

#UnlockingPotential

AISECT Group of Universities is India's leading higher education group that provides world-class and affordable universities. The AISECT group has over three decades of unmatched experience in skill development and job placement.

Prominent Features

Huge in-house funding to **Promote Research**

9 Advanced Research Centres of excellence

Prestigious **Atal Incubation Centre-** supported by NITI Aayog established at RNTU

High End Courses like Cyber Security, Artificial Intelligence, ML delivered through industry giants like Microsoft and HP

8 Registered Patents in 2018

Exclusive campus Radio Channel - **Radio Raman**

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™
MADHYA PRADESH, BHOPAL AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, MP PARAMEDICAL COUNCIL, DEB (UGC) | Recognized by : UGC | Member of : AIU, ACU

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh | Madhya Pradesh | Bihar AN AISECT GROUP UNIVERSITY

AISECT UNIVERSITY™
JHARKHAND, HAZARIBAG AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC

RNTU is in the Rank Band 151-200 in University Category in nirf 2019

AISECT Group of Universities Headquarters : RNTU Campus, Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph. : 0755-2700400, 2700413, E-mail : aisect@aisect.org, Web : www.aisect.org

For more information, call : RNTU, Bhopal - 09993006401, **CVRU, Bilaspur**- 06261900581, **CVRU, Vaishali** - 09993233374, **AU, Jharkhand** - 08252299990, **CVRU, Khandwa** - 09907337693

WITH BEST COMPLIMENTS

Sustainable Mining

Our Activities in Consonance with Nature.
and YOU ARE Always in the Centre

An orgenization committed to environment
Sustainability initiatives
Environmental compliance
Environmental facilities
Awareness creations

GMDC
FUELING THE GROWTH

GUJARAT MINERAL DEVELOPMENT CORPORATION LTD.
(A Government of Gujarat Enterprise), CIN : L14100GJ1963SG001206
Khanij Bhavan, 132 ft Ring Road, Nr. University Ground, Vastrapur, Ahmedabad - 380052.
Phone : 079 - 2791 3200 / 3501 (D) 2791 1151 Fax : 079 - 2791 1151
Email : cosec@gmdcltd.com Website : www. gmdcltd.com

वर्ष 12 ■ अंक 12 ■ पूर्णांक 144 ■ मार्च 2020 ■ रू. 150/-

ISSN - 2348-8638

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
"माधवी", 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल),
उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

समावर्तन का मूल्य
सदस्यता प्रति अंक : 150 रु. मासिक वार्षिक - 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100 $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
"माधवी", 129, दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.) 456010

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

वार्षिक सदस्यता हेतु डिजिटल भुगतान
बैंक का नाम - आयडीबीआई
ब्रांच का नाम - फ्रीगंज, उज्जैन
खाता क्रमांक - 0088102000031620
खातेदार का नाम - समावर्तन
आयएफएससी नं. - आय.बी.के.एल 0000088

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 98938 10050

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.89302 35285

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

मुद्रणालय : आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)
© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

समावर्तन®

मार्च -2020

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : घर : मुरलीधर चाँदनीवाला : 07

अभिमुख : बारह बरस का समावर्तन : रमेश दवे : 08

मेरा नमन : समावर्तन : आदिकथा (दो) : अजय भट्टाचार्य : 09

सरोकार

डॉक्टर रघुबीरसिंह

परिचय : रघुबीरसिंह : 10

कहानी : जब बादशाह खो गया था : रघुबीरसिंह : 12

डॉक्टर रघुबीरसिंह का साहित्य सृजन : अशोक कुमार सिंह : 17

सुधि लेखकों की राय में रघुबीरसिंह का कृतित्व : 21

डॉ.रघुबीरसिंह से जीवनसिंह ठाकुर द्वारा लिया गया साक्षात्कार : 23

एकाग्र

महेन्द्र भानावत

परिचय : महेन्द्र भानावत : 39

आत्मकथ्य : महेन्द्र भानावत : 40

महेन्द्र भानावत की कविता : 44

चंवरी के धुंए से जीवनान्ध हुई चन्दरी बुआ

डॉ.महेन्द्र भानावत एक 'फिनोमिना ही हैं : नंद चतुर्वेदी : 46

एक इनसाइक्लोपिडिया है महेन्द्र भानावत : क़मर मेवाड़ी : 47

डॉ.महेन्द्र भानावत से माधव नागदा की बातचीत : 49

सुधिजनों की दृष्टि में महेंद्र भानावत का साहित्यिक योगदान : 52

रेखांकित : जसिंता केरकेट्टा की कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 26

समकाल कथाकाल : कविता वर्मा की कहानी : कछु अकथ कहानी : चयन : मुकेश वर्मा : 30

विशेष आलेख

समावर्तन के बारह वर्ष : एक गौरवमयी अविराम यात्रा

श्रीराम दवे : 53

कविताएँ : धर्मपाल महेन्द्र जैन, रश्मि रमानी, अशोक गीते : 59

लघुकथाएँ : योगेन्द्रनाथ शुक्ल : 61

वीक्षा : रमेश दवे, वासुदेवन शेष, शशिभूषण बड़ोनी : 62

श्रद्धांजलि : कृष्णबलदेव वैद आप कहाँ हैं : रमेश दवे : 65

साहित्यिक हलचल : 66, अनंतिम : मुकेश वर्मा : 68

रेखांकन : संदीप राशिनकर * अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे

घर

घर। हमारे जीवन की हलचल का केन्द्रबिन्दु। वैदिक ऋषि वास्तोष्पति के रूप में घर को प्रेम, माधुर्य और सुख-समृद्धि का मुख्य स्रोत मानता है। अथर्ववेद के इस सूक्त में ऋषि घर के प्रति निवेदित है, और प्रार्थना करता है कि हे घर! तुममें निवास करने वाले कभी भूख-प्यास से व्याकुल न हों।सब सुखी हों, और सबके भाग्य का उदय हो।

सूनृतावंतरू सुभगा इरावन्तो हसामुदाः।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन।।
इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत।
ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया।।

अथर्ववेद, 7.6.60.6,7.

मेरे घर!
तुम ऊर्जा से भरे हुए
देखते हो मुझे स्नेह की दृष्टि से,
तुम धन और अन्न से परिपूर्ण हो।
ओ मेरे मित्रस्वरूप!
मैं तुम्हारे पास आकर मुदित होता हूँ,
तुम सदैव मेरे स्मरण में होते हो,
मेरे घर!
मुझमें रमे रहो तुम,
मैं तुममें रमा रहूँ।
हम दोनों के बीच
भय का कोई कारण न हो।।1।।

मेरे घर!
तुम ऊर्जावान् हो,
मधुर रसायनों से सम्पृक्त हो।
जब कभी मैं प्रवास से लौटूँ,
तब तुम मुझे अपनेपन से मिलो।।2।।

मैं जब भी तुमसे दूर जाता हूँ,
मुझे तुम्हारी ही याद आती है।
मैं तुम्हें याद करता हूँ
और उन चीजों को याद करता हूँ
जो मुझे तुमसे मिलीं।
मैं बार -बार आना चाहता हूँ तुम्हारे पास,
मेरे घर!
तुम मुझे सदा अपने पास रखना।।3।।

मेरे घर!
तुम धनवान् रहो,
मधुरता का तुममें निवास हो।
तुम्हारे पास आकर
कोई भूख-प्यास से व्याकुल न रहे,
तुम मेरे सखा हो,
भयभीत न होओ।।4।।

हमारे यहाँ गायें हों,
उपयोगी चौपायों से हम समृद्ध हों,
अन्न और घृत के भंडार हों,
मेरे घर!
तुम इन सबकी अभीप्सा करो।।5।।

मेरे घर!
तुम्हारा मन सुंदर हो,
सौभाग्यशाली रहो,
धन-सम्पदा से परिपूर्ण होओ,
और तुम्हारे यहाँ बोली जाने वाली वाणी
सत्य हो, प्रिय हो।
सब लोग हर्षित और मुदित हों,
कोई भूखा-प्यासा न रहे,
भय का कोई चिह्न न हो।।6।।

मेरे घर!
मैं जब प्रवास पर होऊँ,
तुम मेरा पीछा न करो।
यहीं रहो,
और सबका पालन-पोषण करो।
मैं तुम्हारे लिये धन जीत कर लाऊंगा
तब तुम और अधिक तेज से भर जाओगे।
मेरे घर!
हम सबका कल्याण हो।।7।।

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम

बारह बरस का समावर्तन

रमेश दवे

प्रत्येक कल्पनाशील मनुष्य अभिव्यक्त होने के लिए सदैव छटपटाता रहता है और उसकी यही छटपटाहट जब सृजन में अभिव्यक्त होती है तो कभी कविता जन्म लेती है, कभी कथा, कभी नाटक, निबंध या अन्य विधाएँ।'समावर्तन' अपनी बारह बरस की यात्रा में स्वतंत्र अभिव्यक्ति की सृजन-भूमि रहा है। साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली के पूर्व अध्यक्ष डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने समावर्तन के सौवें अंक के लोकार्पण के समय कहा था कि समावर्तन ऐसी एकमात्र पत्रिका है जिसके मुख पृष्ठ पर सौ से अधिक साहित्यकार, सौ से अधिक रंगशीर्ष के कलाकार और आंतरिक पृष्ठों पर सौ से अधिक व्यंग्यकार, कार्टूनिस्ट, फोटोग्राफर आदि छापे गए है। इससे स्पष्ट है कि समावर्तन के 'एकाग्र' 'रंगशीर्ष' एवं अन्य स्तंभ सार्थक हुए है। इसी प्रकार 'रेखांकित' स्तंभ में समावर्तन के मुख्य संपादक डॉ. निरंजन श्रोत्रिय ने लगभग एक सौ से अधिक युवा कवियों की कविताएँ परिचय, चित्र और अपनी समीक्षात्मक टिप्पणी से 'युवा द्वादश' के छह संग्रहों में छाप कर कीर्तिमान रच दिया है, जो अद्वितीय है। मुकेश वर्मा ने समकाल-कथाकाल स्तंभ को कथा साहित्य में प्रतिष्ठा प्रदान की है।

समावर्तन के ये बारह वर्ष बताते हैं कि समावर्तन के संस्थापक दादा प्रभातकुमार भट्टाचार्य ने जो आर्थिक संघर्ष करते हुए पत्रिका को जिद के साथ जारी रखा वह भी अभूतपूर्व उपलब्धि इसलिए है कि जब देश की महान और सर्वाधिक प्रिय कही जाने वाली साहित्यिक पत्रिकाएँ कुछ वर्षों तक चलकर विस्मृति का अतीत बन गई तब समावर्तन का यह बारह वर्षीय युग-संघर्ष इस बात का प्रतीक एवं प्रमाण है कि अपनी भाषा, अपना साहित्य और अपनी संस्कृति एवं कलाओं के प्रति समर्पण क्या होता है। कहा जाता है कि हिन्दी में लगभग चार हजार पत्रिकाओं का मासिक द्वैमासिक, त्रैमासिक, अनियमित आदि के रूप में प्रकाशन किया जाता है। कुछ साहित्य और कलाओं की पत्रिकाएँ अपनी उत्कृष्टता के लिए जानी जाती है और अनेक पत्रिकाएँ केवल पत्रिकाओं की भीड़ बनकर रह गई हैं। ऐसे में 'समावर्तन' ने जो काम किया है वह भले ही आत्म-प्रशंसा लगे किन्तु है तो यह कार्य श्लाघनीय और महत्वपूर्ण। इस कार्य का निष्ठापूर्वक संयोजन, संतुलन, संपादन और समन्वय का काम करने वाले सहयोगी रहे कवि कथाकार संतोष चौबे, कथाकार मुकेश वर्मा, कवि, कथाकार निरंजन श्रोत्रिय, कथाकार सूर्यकान्त नागर, अभिलाष एवं अजय भटटाचार्य, वाणी दवे और अत्यंत उल्लेखनीय श्रीराम दवे जो इसके संपादक हैं। संपादक मण्डल के अध्यक्ष के रूप में मेरी भूमिका को मैंने केवल 'अभिमुख' लिखने तक सीमित रखा क्योंकि उम्र और स्वास्थ्य के कारण जितना आवश्यक था उतना श्रम करने के लिए तैयार नहीं था। काव्य राग, कथाराग, मनोराग समावर्तन के ऐसे स्तंभ हैं जिन्हें श्रीराम दवे, मुकेश वर्मा और स्वयं मैंने पाठकों की पसंद बनाने का प्रयत्न किया।

यह तो हुआ 'समावर्तन' की आंतरिक कर्मभूमि से जुड़े लोगों के अवदान की बात, मगर सर्वाधिक महत्वपूर्ण तो है लेखकों, कलाकारों, विचारकों और पाठकों का योगदान जिनके बिना किसी भी पत्रिका के जीवन की उम्मीद नहीं की जा सकती। 'समावर्तन' पत्रिका अब ऐसे समय में जी रही है जब मीडिया का आक्रमण है, पाठक-रूचि का लगभग विसर्जन है और पश्चिम के विचारक साहित्य, पुस्तक और तरह तरह के अंतों की वैचारिक घोषणा कर रहे हैं। इलेक्ट्रानिक उपकरणों ने मनुष्य का मन ही बदल दिया है। हम आत्म-बल के बजाय आत्म-छल के शिकार हैं। जितना लिखा जा रहा है, उतना पढ़ा नहीं जा रहा। जीवन अब साहित्य-राग से न जुड़कर, भौतिकताओं के परिवर्तनशील आकर्षण से ग्रस्त हैं। छात्रों, प्राध्यापकों, अध्यापकों, पत्रकारों आदि सबकी रूचियों पर मीडिया का इतना प्रभाव है कि अब हम अपने सोचने, सृजन करने, श्रेष्ठ साहित्य पढ़ने और जीवन को कलाओं से समृद्ध करने की प्रवृत्ति ही गँवा बैठे हैं। ऐसे विपरीत समय में भी क्या 'समावर्तन' का टिके रहकर साहित्य-साधना का संघर्ष करते रहना कम महत्वपूर्ण नहीं है? निष्कर्ष पाठक करें कि उन्हें शब्द के आनंद की अल्पकालीन भौतिक-सत्ता चाहिए या साहित्य के आनंद की चिरन्तनता?

'समावर्तन' का अपने लेखकों और पाठकों से यही अनुरोध है कि 'समावर्तन' की जीवनदायिनी शक्ति के रूप में आप जुड़े रहिए, अन्य लोगों को जोड़ते रहिए और समावर्तन का हौसला बढ़ाते रहिये ताकि समावर्तन खुद्दारी के साथ कह सके-

किसकी जुर्रत है कि मेरे परवाज में करे कोताही
मैं परों से नहीं, हौसलों से उड़ा करता हूँ।

इस अंक में सुविख्यात इतिहासज्ञ, निबंधकार, राज्यसभा सांसद तथा म.प्र. के गौरव स्व.रघुबीरसिंह (महाराजकुमार-सीतामऊ) के कृतित्व और व्यक्तित्व पर जहाँ 'सरोकार' संयोजित किया गया है वहीं लोकसंस्कृति विद् लेखक एवं साहित्यकार डॉ.महेन्द्र भानावत के बहुविध कृतित्व पर 'एकाग्र' में महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की जा रही है।

समावर्तन के अनवरत प्रकाशन के बारह वर्ष पूर्ण होने पर अभी तक प्रकाशित सभी स्तम्भों, धारावाहिक आलेखों आदि विषयक जानकारी भी इस अंक को महत्त्वपूर्ण बना रही है।

सभी वरेण्य साहित्यकारों, रचनाकारों, विज्ञापनदाताओं, शुभचिंतकों तथा सभी पाठकों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हुए सहयोग की अपेक्षाएँ....रा

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

समावर्तन आदिकथा (दो)

देखते-देखते समावर्तन नामक मासिक पत्रिका के नियमित अबाध बेरोकटोक प्रकाशन की आश्चर्यजनक निरन्तरता के 12 (बारह) बरस इसी मार्च 2020 अंक के साथ पूरे हो गये। **बारह बरस यानी एक पूरा युग बीत गया।** इन बारह वर्षों में जाने कितनी बार टूटन की कगार पर पहुंचे, अब टूटे, अब टूटे की छटपटाहट में दिल की धड़कनें बढ़ीं कि ऐसे में कुछ न कुछ करिश्मा हुआ और हमारी चिन्ता काफूर हो गयी। इस कठिन दौर में समावर्तन के सह संस्थापक, जिन्होंने समावर्तन की शुरूआत की और इसकी मजबूत नींव डाली। मेरे दादा **अभिलाष भट्टाचार्य** ने पत्रिका के बन्द होने की संभावना की सूचना मिलते ही इसकी फिसली हुई बागडौर ऐन मौके पर सम्हाल ली और आगामी कई महीने सम्हालते रहे। उन्होंने किसी को खबर भी नहीं होने दी कि मुझे यानी अपने छोटे भाई को समावर्तन का स्वामित्व पूर्णतया सौंपने के बावजूद अपने छोटे भाई के स्वामित्व का बेनाम संचालन करते रहे। खैर अभिलाष दादा तो भट्टाचार्य परिवार की अगली पीढ़ी के मुखिया हैं यानी हमारे बाबा (डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य) के प्रथम उत्तराधिकारी। बाबा बार-बार कहते रहे कि पत्रिका बंद कर दो लेकिन **अभिलाष दादा** ने उनकी एक नहीं सुनी। मैंने भी नहीं मानी। **एक हमारी बहन भी है जिनका जिक्र हम पहले भी कर चुके हैं और जिन्होंने ज़िद बनाये रखी है कि उनका नाम नहीं प्रकट किया जाये।** उन्होंने समावर्तन के खाली कोष को समय-समय पर थोड़ा-थोड़ा भरने का क्रम जारी रखा है। बाबा के एक साहित्यिक मित्र हैं **श्री प्रतापसिंह सोढ़ी** जिन्होंने कभी-कभी आर्थिक सहायता की। समावर्तन के यशस्वी सम्पादक मंडल। के हमारे साथी कुछ **प्रबंध सम्पादक श्री सदाशिव कौतुक** ने समावर्तन के कार्यक्रमों को स्पॉन्सर किया और समय-समय पर आर्थिक सहायता दी।

लेकिन जिस शख्सियत ने मेरे बाबा से कहा- दादा, हम समावर्तन बन्द नहीं होने देंगे और जिन्होंने स्थायी रूप से समावर्तन का नियमित प्रकाशन जारी रखने का संकल्प ले रखा है हर महीने, हमारे मसीहा हैं पाँच विश्वविद्यालयों के संस्थापक-कुलाधिपति एवं प्रख्यात साहित्यिक, संस्कृति कर्मी, वैज्ञानिक और समावर्तन के मुख्य संरक्षक श्री संतोष चौबे। उनको नमस्कार...प्रणाम।

मैं याद करता हूँ **15 मार्च 2008** जिस दिन नयी दिल्ली के इंडिया इन्टरनेशनल अनेक्स सभागार में **कविवर कुँवरनारायण** के करकमलों से समावर्तन के प्रवेशांक का लोकार्पण हुआ था। हम तीनों बाबा-माँ की सन्तानें अभिलाष भट्टाचार्य, कृष्णा बनर्जी और मैं सभागार में प्रवेश द्वार पर पूरे कार्यक्रम में खड़े रहे और रोमांचित होते रहे। हॉल खचाखच भरा था। कुछ महत्वपूर्ण साहित्यकार स्थानाभाव के कारण खड़े थे। भारत की राजधानी नयी दिल्ली में मध्यप्रदेश के मालवांचल की प्राचीन नगरी उज्जैन का वर्चस्व चौंकाने वाला था।

उस ऐतिहासिक तिथि के बारह साल बाद आज 8 मार्च 2020 को माँ-बाबा मेरे साथ अहमदाबाद में हैं। मैं इन दिनों अपने कामकाज के सिलसिले में अधिकतर अहमदाबाद में ही रहता हूँ। वैसे मेरा स्थायी निवास सूरत में ही है।

शाम का वक्त है और हम लोग चाय पी रहे हैं। चाय के साथ शाम भी है। बाबा कहते हैं- चाय चना चबेना हो जाए। चाय पीते हुए बाबा यादों में खो गये बोले- समावर्तन के शुभारंभ की बात करते हुए मुझे सबसे पहले प्रख्यात साहित्यकार **डॉ.प्रमोद त्रिवेदी** की याद आती है। प्रमोद उस समय माधव महाविद्यालय उज्जैन में विद्यार्थी थे और मैं राजनीति विज्ञान का शिक्षक। शुरू से ही मैं प्रमोद की पहचान एक कवि के रूप में ही करता था और अक्सर कहता था कि मैं प्रमोद की कविता का फैन हूँ। बी.ए. पास करने के बाद प्रमोद हिन्दी में एम.ए.करने के लिए अलीगढ़चले गये। अलीगढ़ से लौटे तो मेरे द्वारा **1966 में संस्थापित सांदीपनि स्नातकोत्तर कला, कविता और विधि महाविद्यालय उज्जैन में लेक्चरर नियुक्त हो गये।** मैं भी उज्जैन में ही बस गया और प्रमोद भी उज्जैन में आ बसे। इसलिए हम दोनों का साथ लगातार बना रहा। और आज भी बना हुआ है। मैं जब विद्यार्थी कल्याण विभाग का प्रथम डीन बना 1972 में तब विक्रम विश्वविद्यालय परिसर में स्थित विद्यार्थी विश्राम भवन में ही विद्यार्थी कल्याण विभाग की समस्त गतिविधियाँ संचालित होती थीं। इस दौर में **विक्रम विश्वविद्यालय समाचार मासिक पत्रिका पूरे 12 वर्षों तक मेरे सम्पादन में प्रकाशित होती रही।** चूंकि **प्रमोद** का सान्दीपनि महाविद्यालय सायंकालीन था इसलिए दोपहर को **प्रमोद** अक्सर मेरे विभाग में आ जाते थे। विक्रम विश्वविद्यालय समाचार में कई स्तम्भ थे। एक व्यंग्य का स्तम्भ भी था। **प्रमोद एक व्यंग्यकार के रूप में इस स्तम्भ के लिए बेताल की की डायरी प्रत्येक अंक में लिखते रहे।** मैंने विक्रम विश्वविद्यालय से सम्बद्ध समस्त 45 महाविद्यालयों से युवा कवियों की कविताएँ मँगवाई। मैं चाहता था कि इस चयनित कविताओं को संकलित कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाये। **इस काव्य संग्रह के सम्पादन का भार मैंने प्रमोद को सौंपा।** इसी दौर में मैंने **सुमन मान्टेसरी हाईस्कूल की** स्थापना 1971 को की जिसमें प्रमोद की धर्मपत्नी **वसुमती शिक्षिका** के रूप में और उनका बेटा **अमित विद्यार्थी** के रूप में जुड़े। **प्रमोद ने स्कूल के वार्षिकोत्सव के लिए बाल नाटक लिखा- नया लेखन जिसका निर्देशन और प्रस्तुति प्रमोद ने ही की।** 1974 में **विक्रम विश्वविद्यालय रंग** शिविर का आयोजन मैंने किया जिसके निर्देशन के लिए राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली से निर्देशक श्री राजेन्द्र गुप्त पधारे। उन्होंने 1974 के कालिदास समारोह के लिए **धर्मवीर भारती कृत अन्धायुग** की प्रस्तुति की जिसमें **प्रमोद ने युधीष्ठिर की भूमिका में अभिनय किया।** ढेरों और काम हुए इस दौर में प्रमोद के साथ। डॉ.रमेश सोनी को मैं एक रेल्वे अधिकारी के रूप में ही जानता था। प्रमोद ने उनके साथ नये सिर से मेरी पहचान करवायी जिसके फलस्वरूप **डॉ.रमेश सोनी इन्दौर के क्रिश्चियन कॉलेज के प्रोफेसर नियुक्त हुए।** इस नियुक्ति में अहम भूमिका निभायी मेरे बालसखा एवं प्रख्यात आलोचक **डॉ.धनंजय वर्मा ने।** रमेश सोनी निरन्तर पत्रिका सम्पादन प्रकाशन की किसी न किसी योजना के साथ जुड़े रहते थे। उन्होंने एक त्रैमासिक शोध पत्रिका निकाली **रिसर्च लिंक।** मैं भी पत्रिका प्रकाशन के लिए कटिबद्ध था। ''कालिदास'' निकालकर हमने बहुत पहले असफल प्रयास भी किया था। मेरे दिमाग में एक साहित्यिक पत्रिका का विचार धीरे-धीरे जुनून की शक्ल ले रहा था। **बड़े बेटे अभिलाष ने आर्थिक पक्ष सम्हालने की जिम्मेदारी ले ली। प्रमोद, रमेश और मैं इस योजना को ठोस रूप देने में 2007 से ही लगे थे।** पत्रिका के रजिस्ट्रेशन के लिए **दस नाम की सूची तैयार करनी थी जिसे प्रमोद ने तैयार की।** सूची का पहला नाम 'सबद' था। **हमने पैड छपवा लिया और डॉ.रमेश सोनी को सम्पादक घोषित कर दिया।** मगर रमेश ने इस बीच रिसर्च लिंक त्रैमासिक को मासिक पत्रिका का रूप दे दिया और उसमें अत्यधिक व्यस्त हो गये। 'सबद' नाम भी निरस्त हो गया। **प्रमोद की सूची का दसवाँ नाम 'समावर्तन' स्वीकार हो गया।** (क्रमशः)

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

डाक्टर रघुबीरसिंह

डॉ. रघुबीरसिंह महाराजकुमार सीतामऊ, मध्यप्रदेश के ही नहीं, वरन् देश के भी जाने-माने इतिहासज्ञ-साहित्यकार थे। आपकी विद्वता की ख्याति मालवा, मध्यप्रदश ही नहीं, बल्कि भारत की सीमाओं को लाँघकर विदेशों में पहुँची है। राजघरानों की विलासिता से उस युग में राजपरिवार के सदस्य होते हुए भी उन्होंने, शिक्षा, इतिहास और साहित्य सृजन में जो उपलब्धियाँ और ख्याति अर्जित की वह प्रशंसनीय है। उनकी ये उपलब्धियाँ महाकाव्यकालीन राजा जनक और मालवा के राजा भोज की याद दिलाती हैं।

डॉ. रघुबीरसिंह मध्यकालीन भारतीय इतिहास के एक ऐसे प्रबुद्ध इतिहासकार थे, जिन्होंने खुले मानस से फारसी संसाधनों और राजस्थानी संसाधनों के महत्त्व के बीच संतुलन ही स्थापित नहीं किया, अपितु उनका संतुलित रूप में उपयोग कर ऐसे इतिहास ग्रंथों का निर्माण भी किया जो वर्तमान और भावी इतिहासकारों के लिये सदा उपयोगी और प्रेरणादायी सिद्ध होंगे।

जन्म एवं शिक्षा : सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. रघुबीरसिंह का जन्म सीतामऊ रियासत के महाराजा रामसिंह के यहाँ 23 फरवरी, 1908 ई. लदूना के राजमहलों में हुआ था। वे ज्येष्ठ पुत्र थे अतएव महाराज कुमार के नाम से जाने जाते थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। मिडिल की पढ़ाई के लिए उन्होंने श्रीराम हाईस्कूल में प्रवेश लिया। बड़ौदा से 1924 में हाईस्कूल, 1926 में इण्टरमीडिएट की परीक्षा, 1928 में आगरा विश्वविद्यालय से बी.ए. होल्कर कॉलेज इन्दौर से 1930 में एल.एल.बी. 1933 में आगरा विश्वविद्यालय से ही एम.ए. तथा 1936 में 'मालवा इन ट्रांजिशन' इतिहास विषय पर डी.लिट्' की उपाधि प्राप्त करने वाले पहले विद्यार्थी थे।

न्यायाधीश : एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद सीतामऊ रियासत के हाईकोर्ट में न्यायाधीश के रूप में नियुक्त हो गये और वे इस पद पर अगस्त 1940ई. तक रहे।

चेम्बर ऑफ प्रिंसेज में सहभागिता : चेम्बर ऑफ प्रिन्सेज (नरेन्द्र मण्डल) के सम्मेलनों एवं कार्यवाहियों में सीतामऊ रियासत के प्रतिनिधि के रूप में सक्रिय भाग लेते रहे। उन्होंने देशी रियासतों की समस्याओं पर गम्भीर अध्ययन किया और इस विषय पर एक पुस्तक ''इण्डियन स्टेट्स एण्ड द न्यू रिजीम'' 1938 ई. में लिखी जो भारतीय विश्वविद्यालयों में पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत की गई।

सैनिक अधिकारी के रूप में : द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने पर 1939 ई. में महाराजकुमार ने सेना में भर्ती होने का निर्णय कर अक्टूबर 1, 1940 से फरवरी 28, 1941 तक इण्डियन आब्जर्वर कोर के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया गया। तदनन्तर डॉ. रघुबीरसिंह अगस्त 1, 1941 ई. को रावलपिण्डी में इण्डियन आब्जर्वर कोर के केप्टन पद पर नियुक्त हुए। उसके बाद वे पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित क्वेटा में सितम्बर 12, 1941 ई. को इमरजेंसी कमीशण्ड ऑफिसर के रूप में नियुक्त किये गये। अगस्त 24, 1942 ई. से सितम्बर 10, 1942 ई. के मध्य पेशावर में उन्होंने पुनः ऑफिसर प्रशिक्षण प्राप्त किया। उसके बाद पेशावर तथा नौशेरा में नियुक्त हुए अक्टूबर 1 को वे मद्रास प्रेसीडेन्सी से सोयनूर एवं कालीकट में भेज दिये गये। वहाँ से तीन सप्ताह के विशेष प्रशिक्षण हेतु जुहू (मुम्बई) भेजे गये। उस प्रशिक्षण के उपरान्त मेजर पद पर पदोन्नत होकर मद्रास प्रेसीडेन्सी में स्थित पल्लावरम एवं वाल्टेयर में नियुक्त रहे, जहाँ से वे अप्रैल 1945ई. में त्यागपत्र देकर चले आये।

राज्यसभा के सदस्य : सन् 1952 में बनी पहली राज्यसभा के सांसद बने और लगातार 1962 तक रहे। एक जागरूक सांसद के रूप में देश की विभिन्न प्राचीन रियासतों के अभिलेखागारों में नष्ट हो रहे दस्तावेजों के समुचित रख-रखाव, भारत के बाहर अन्य देशों-इण्डिया ऑफिस लायब्रेरी लन्दन आदि से भारत सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री को देश में लाये जाने, एक राष्ट्रीय पंचाग की आवश्यकता, शिक्षा के विविध पहलुओं एवं देश की तत्कालीन समस्याओं की ओर उन्होंने सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। हिन्दी भाषा के लिए जब भी कोई चर्चा हुई उसमें डॉ. रघुबीरसिंह ने खुलकर भाग लिया। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने व व्यावहारिक रूप से उसका बोलचाल में प्रयोग के लिए वे कटिबद्ध थे। वे चाहते थे कि भारत के सभी विश्वविद्यालयों में राष्ट्रभाषा हिन्दी का अध्ययन अध्यापन हो, जिससे इसकी उन्नति हो सके। भाषा के आधार पर भारतीय राज्यों के निर्माण के वे विरुद्ध थे। भारतीय डाक एवं तार व्यवस्था के बारे में डॉ. रघुबीरसिंह जी जीवन भर चिन्तित रहे। उनका विचार था कि इस व्यवस्था में सुधार होना चाहिए, न कि इसका प्रसार। उन्हें इस बात से बड़ी पीड़ा होती थी कि डाक व्यवस्था का विस्तार तो तेजी से किया जा रहा है, किन्तु इसकी कार्य कुशलता घटती जा रही हैं पूर्व में जब इन्दौर-उज्जैन ब्राडगेज लाईन का कार्य प्रारंभ किया तब उन्होंने महू की सैनिक स्थिति को देखते हुए प्रयास किया कि इसे महू तक बढ़ाया जाये। इसी प्रकार रतलाम रेल्वे स्टेशन पर मीटर गेज का प्लेटफार्म नहीं था केवल रेलें आकर ठहर जाया करती थीं। उन्होंने संसद में रतलाम मीटरगेज का प्लेटफार्म बनवाने की आवाज उठाई तथा अपने प्रयत्न में वे सफल रहे।

डॉ. रघुबीरसिंह रेलों के विद्युतीकरण के प्रति भी बहुत सचेत थे। डॉ. रघुबीरसिंह के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि फ्रांस से जून 17, 1956 ई. को रेल्वे विद्युतीकरण विशेषज्ञों का एक दल भारत आया और यहाँ अगस्त 31, 1956 ई. तक रहकर रेल्वे ट्रेक्स का सर्वे किया।

डॉ. रघुबीरसिंह रेल्वे के साथ ही उनके कर्मचारियों की सुख-सुविधा के प्रति भी सचेत थे। उनका मानना था कि रेल्वे के इंजिन ड्रायवर एवं क्लीनर आदि को रेल्वे स्टेशनों के निकट ही मकान मिलने चाहिये, जिससे वे अधिक कर्मनिष्ठता से अपने दायित्व का निर्वाह कर सके। प्रथम पंचवर्षीय योजना में चम्बल परियोजना को सम्मिलित कराने में डॉ. रघुबीरसिंह की विशेष रुचि थी तथा यह परियोजना स्वीकृत कर ली गई जिसका परिणाम यह हुआ कि गाँधीसागर बाँध बनकर तैयार हुआ।

पुरस्कार एवं सम्मान : हिन्दी गद्य के सुविख्यात लेखक और सुप्रतिष्ठित इतिहासकार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद द्वारा 1945 ई. का मंगलाप्रसाद परितोषिक, आपकी हिन्दी पुस्तक 'मालवा में युगान्तर' पर प्रदान किया गया। आपकी 'पूर्व-आधुनिक राजस्थान' नामक पुस्तक पर उत्तरप्रदेश सरकार ने फरवरी 1954 ई. में विशेष पुरस्कार प्रदान किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद से (दिसम्बर 1975 ई. में) 'साहित्यवाचस्पति' की मानद् उपाधि से सम्मानित किये गये। उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ ने उनकी आजीवन हिन्दी साहित्य की सेवाओं के लिये 1978 ई. में विशेषरूपेण सम्मानित कर साथ में पुरस्कारस्वरूप पन्द्रह हजार रूपये की राशि भेंट की।

इण्डियन हिस्टोरिकल रिकार्ड्स कमीशन (भारत शासन) के सहयोगी सदस्य 1937-1942 ई. और 1952-1972 ई. से भारत शासन ने आपको कमीशन पर अपनी ओर से मनोनीत किया। इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के ग्वालियर और वाल्टेयर सम्मेलनों में क्रमशः 'क्षेत्रीय इतिहास' विभाग (दिसम्बर 1952) और 'मुगल इतिहास' विभाग (दिसम्बर, 1953) की अध्यक्षता की। 'मध्यप्रदेश इतिहास परिषद' विभाग के जबलपुर के वार्षिक सम्मेलन के (दिसम्बर 1974 में) अध्यक्ष हुए, 'राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस' के चौपसनी (जबलपुर) अधिवेशन की (मार्च 1979 ई.) अध्यक्षता की। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ग्वालियर अधिवेशन की (अप्रैल, 1956 ई.में) अध्यक्षता की।

यूनाइटेड नेशन्स (संयुक्त राष्ट्र संघ) : राष्ट्र संघ की साधारण सभा के ग्यारहवें अधिवेशन में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल में संसदीय सदस्य के रूप में चुना गया। वे तदर्थ समिति में माननीय वी.के. कृष्ण मेनन संसद सदस्य व श्री जी.एस. पाठक के सलाहकार व मि. आर्थर एस. खाल के अल्टर्नेटिव थे। इस अधिवेशन में भाग लेने के लिए नवम्बर 4, 1956 ई. को मुम्बई से रवाना हुए। न्यूयार्क में विभिन्न विषयों पर भारतीय प्रतिनिधि मण्डल की कई बैठकें, न्यू इण्डिया हाऊस, न्यूयार्क में हुई, जिनमें डॉ. रघुबीरसिंह ने भाग लिया।

टीचर्स कॉलेज, कोलम्बिया विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के आग्रह पर डॉ. रघुबीरसिंह दिसम्बर 4, 1956 को टीचर्स कॉलेज गये। इस विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के प्रोफेसर डब्ल्यू स्पीसेक ने अपने दिसम्बर 10, 1956 ई. के धन्यवाद पत्र में लिखा कि ''डॉ रघुबीरसिंह ने हमारे कॉलेज में भारत की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों पर जो वक्तव्य दिया उससे हम सभी लाभान्वित हुए तथा हमारे जिज्ञासापूर्ण प्रश्नों के बहुत ही उपयुक्त समाधान उत्तर दिये, जिसके लिये हम उनके आभारी है।''

भारतीय इतिहास को उनकी देन : इतिहास लेखन के क्षेत्र में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने एक नये युग का आरम्भ किया था। अंग्रेजी में मौलिक ग्रन्थ Malwa in transition, Indian States and the new Regime, Durgadas Rathor, Studies on Maratha and Rajput History जबकि सम्पादित ग्रन्थ English Records of Maratha : Puna Residency correspondece (1780-1784), English Records of Maratha : Puna residency correspondecne (Vol 9, 1800-1803), English Records of Maratha : Puna Residency correspondence (Vol. 10, 1802-1804), A Hand List of Important Historical manscript, Shivaji Visit to Aurangzeb at Agra, Indian Records Series Fort William India House correspondence Vol. 10, Marwar Under Jaswant Singh, A Julusisanesh of the Mughal Emperors of India (1556-1857), A History of Jaipur हिन्दी इतिहास विषयक ग्रन्थ पूर्व मध्यकालीन भारत, मालवा में, युगान्तर, रतलाम का प्रथम राज्य, पूर्व आधुनिक राजस्थान, महाराणा प्रताप, दुर्गादास राठौड़, राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार और उनका कृतित्व, महाराणा प्रताप और स्वाधीन भारत, महाराणा प्रताप : जीवन, महत्त्व व देन, हिन्दी सम्पादित ग्रन्थ वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी, री टॉड कृत राजस्थान - राजपूत कुलों का इतिहास, कृष्ण भट्ट रचित-सांभर युद्ध, शाहजहाँनामा, अजित ग्रन्थ, सिलेक्शन फ्राम द पेशवा दफ्तर - हिन्दी साधने - मराठ्यांची उत्तरेतील शासन व व्यवस्था (1726-84), मराठा राज्य सम्बन्धी अभिलेख, कुंभकर्ण रचित- रतनरासौ, शिवाजी, औरंगजेब, मालवा के महान् विद्रोहकालीन अभिलेख, कविराजा श्यामलदास दधवाड़ियाकृत - वीर विनोद, (भाग 1,) जंगलनामा, जोधपुर राज्य की ख्यात, जहाँगीरनामा, शोधसाधना (1980-1988) **हिन्दी साहित्य** ग्रन्थ बिखरे फूल, सप्तद्वीप, शेष स्मृतियाँ, जीवन कण, जीवन धूली **हिन्दी सम्पादित ग्रन्थ** कहानी पुरानी, रामचरित्र तथा उनके एक सौ से अधिक शोध-पत्र भारतीय इतिहास के संदर्भ में लिखे गये।

श्री नटनागर शोध संस्थान की स्थापना : डॉ. रघुबीरसिंह ने लगभग 1936 ई. में 'रघुबीर लायब्रेरी' की स्थापना की थी। तब से इनका निरन्तर विकास होता रहा। इसमें फारसी, राजस्थानी, हिन्दी, संस्कृत, मराठी के हस्तलिखित ग्रंथ, माइक्रोफिल्में फोटो-प्रिण्टस आदि संग्रहीत किये जाते रहे। यों यह लायब्रेरी मध्यकालीन भारतीय इतिहासकारों का महत्त्वपूर्ण आकर्षण केन्द्र बन गई। सन् 1946 ई. से ही देश-विदेश के कई विश्वविद्यालयों से पी-एच.डी. और डी.लिट्. उपाधियों के अनेकों शोधार्थी निरन्तर यहाँ आते रहे हैं।

अगस्त 14, 1974 ई. को श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ की स्थापना कर अपनी सुविख्यात 'श्री रघुबीर लायब्रेरी' आदि अन्य संग्रहों को तब संस्थान को समर्पित कर इसे उल्लेखनीय शोध-केन्द्र बना दिया। डॉ. रघुबीरसिंह इस संस्थान के अध्यक्ष और मानद् निदेशक रहे। मध्यप्रदेश शासन ने संस्थान को विशिष्ट मान्यता प्रदान की है। कई विश्वविद्यालयों ने संस्थान को शोध-केन्द्र के रूप में मान्य कर लिया है और संशोधक अधिकाधिक संख्या में संस्थान में आने लगे हैं।

डॉ. रघुबीरसिंह कोई पच्चीस वर्षों से कई एक विश्वविद्यालयों द्वारा मान्य पी-एच.डी. के लिए शोध-निदेशक रहे थे। उनके सीधे निदेशन में दस-बारह संसाधकों ने पी-एच.डी. उपाधि हेतु शोध-ग्रंथों की रचना की, जिनकी परीक्षकों ने इस युग के सर्वश्रेष्ठ शोध-ग्रंथों में गणना की। वे पी-एच.डी. तथा डी.लिट्. शोध-ग्रंथों के परीक्षक भी नियुक्त हुए थे।

मूर्धन्य साहित्यकार और लब्धप्रतिष्ठित इतिहासकार महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिंहजी का 83वर्ष की अवस्था में दिल का दौरा पड़ने के कारण दुर्भाग्यवश 13 फरवरी, 1991 ई. को सीतामऊ में स्वर्गवास हो गया। यों मूर्धन्य साहित्य और इतिहासकार डॉ. रघुबीरसिंह न केवल भारत, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यक्तित्व के धनी थे। उनके द्वारा स्थापित नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ न केवल म.प्र.बल्कि देश का ख्याति प्राप्त गौरव केन्द्र है।

डॉ.मनोहरसिंह राणावत,
सचिव श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ।

कहानी

''जब बादशाह खो गया था''

स्व. डॉ. रघुबीरसिंह

''क्या कहती है ? दिल्ली में तेल नहीं मिलता? हिन्दोस्तान के शहंशाह के तख्तनशीन होने की खुशी में क्या अब दिल्ली में चिराग भी न जलेंगे ?''

''हुजूर ! कल तक तो रुपए का आध सेर की दर से तेल मिलता भी था, लेकिन आज तो सारे व्यापारी यही कहते हैं कि सोने की मोहर देने पर भी आध सेर तेल नही मिलेगा। दिल्ली में अब.....।''

''तेल नहीं रहा। क्यों ? तेल न रहा, तो न सही, आज दिल्ली में घी के दिए जलाए जायँगे।''

दासी सिर झुकाए खड़ी रही। बेगम ने कहा- ''तू खड़ी-खड़ी क्या ताक रही है, ढिंढोरा पिटवा दे कि आज घी के दिए जलाए जायँगे। कह देना कि लाल कुँवरि का हुक्म है। बस, इतना ही काफी होगा।''

बाँदी चल पड़ी और लाल कुँवरि ने दिल्ली के लाल किले के खास महल में एक मुलायम सेज पर अँगड़ाई लेकर सफेद संगमरमर की खुली खिड़की से देख पड़ने वाली यमुना की काली धार पर नजर डाली।

***

दिल्ली एक बार फिर बस चुकी थी। भारत का सम्राट् प्रथम बार दिल्ली में सिंहासनारूढ़होने आया था। शाहजहाँबाद ने पहली बार मुगलों के ऐश्वर्य, उनकी विलासिता तथा उनके मस्तानेपन की पूरी झलक देखी थी। औरंगजेब का पौत्र बहादुरशाह, शाह-इ-बेखबर का बेटा सम्राट् जहाँदारशाह अपने भाइयों पर विजय प्राप्त कर भारत का एकछत्र शासक बना था, परन्तु उस सम्राट् पर भी दूसरे का शासन था। दिल्ली के उस लाल किले में स्थित नवोढ़ा लालकुँवरि दिल्ली के उस रंगमंच पर बैठी सम्राट् जहाँदारशाह पर शासन करती थी। कलावंत की लड़की होते हुए भी उसने भारत-सम्राट् को अपने वश में कर लिया था। उस लाल किले की आत्मा लालकुँवरि में ही घनीभूत हो गयी थी।

दिल्ली के मस्ती के दिन थे और लाल किले में राग-रंग का दौरदौरा था। सोने की वह छत तथा रत्नों से जड़ी हुई दीवारें, उनको आलोकित करने वाले हजारों झाड़-फानूस और उन पर सुरा और संगीत का प्रभाव।

***

''मलका कहाँ है?''

''जहाँपनाह ! ऊपर अटारी पर है।''

सुबह का समय था, गर्मी के दिन थे, अभी धूप चढ़ी न थी, ठंडी हवा बह रही थी।

बादशाह ने ऊपर जाकर देखा, खिड़की के पास बैठी लालकुँवरि ने शीराजी का ग्लास ढाल कर मुँह को लगाया। वह सामने बादशाह को देख कर उठ खड़ी हुई।

''आज अनमनी-सी क्यों हो रही है लाल ?''

यों ही कुछ दिल में बेचैनी-सी मालूम होती है।''

''तो दिल बहलाने का कुछ इन्तजाम किया जाय?''

''इसीलिये तो इस खिड़की के पास बैठी जमुना को देख रही थी। अरे बड़ी गर्मी है। कोई है ? शरबत का एक ग्लास। क्या जहाँपनाह को प्यास नहीं लग रही है?''

''हाँ शरबत तो ठीक है, लेकिन जब तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है, तो कोई इंतजाम क्यों नही किया। हकीम साहब को बुलवा लिया जाय?''

''नहीं, हकीम साहब कुछ न कर सकेंगे। मैं बीमार थोड़े ही हूँ, जो उनकी दवा लूँ। आज कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।''

''तो आज दोपहर के बाद कहीं घूमने चलेंगे, जरा गर्मी कम हो जाने दो। अगर दोपहर में कुछ बूँदाबाँदी हो गई तो अधिक अच्छा होगा।''

''अच्छा । पर जहाँपनाह। देखिए, वह क्या कोई नाव आ रही है।''

''हाँ, नाव ही तो है। क्यों, क्या तुम नाव पर दरिया की सैर किया चाहती हो?''

''नहीं। लेकिन आज तक मैंने यात्रियों से भरी नाव को कभी डूबते नहीं देखा।''

''वाह। खूब कही। यह भी कोई देखने की बात है? यह कोई तमाशा थोड़े ही है।''

''तो क्या आप मेरी इतनी-सी भी इच्छा पूरी नहीं कर सकते?''

''लालकुँवरि ! तुम भी कैसी छोटी-छोटी सी बातों में जिद करने लग जाती हो। मैंने तो ऐसे ही कहा था। अगर देखा चाहो, तो देख लो, अभी कहे देता हूँ। कोई बाँदी है?''

''जी हुजूर?'' बाँदी ने हाजिर होकर अर्ज की।

''देखो न्यामतखाँ को जल्द बुला लाओ।''

और थोड़ी देर बार - जब न्यामतखाँ हाजिर हुए-

''जहाँपनाह। क्या हुक्म होता है?''

''देखो सामने से जो यह नाव आ रही है, उसे डुबाने का हुक्म दे दो। मलका यात्रियों से भरी नाव को डूबते देखना चाहती है। जाओ, जाकर कह दो कि अभी इस हुक्म की तामील की जा।''

''परन्तु हुजूर।'' न्यामतखाँ बाले- ''अभी तक मुझे मुलतान की सूबेदारी का पट्टा नहीं मिला। नवाब जुल्फिकार।''

''न्यामतखाँ ?'' बीच में ही बादशाह बोल उठे- ''अभी नाव के बारे में इंतजाम करो। मुलतान की सूबेदारी की बात बाद में देखी जायगी।''

''नहीं हुजूर।'' न्यामतखाँ ने जवाब दिया- ''यह तो अभी तय हो जाना चाहिये, हुजूर से फिर कब अर्ज कर सकूँगा। मेरे तो दिन यों ही गुजर रहे हैं। हुजूर का हुक्म हो गया, लेकिन ये काम वाले सुनते किसकी है। अभी तक नवाब जुल्फिकार...।''

''उस जुल्फिकारखाँ की इतनी हिम्मत।'' बीच में ही लालकुँवरि ने जरा तैश में आकर कहा-

''हिन्दोस्तान के बादशाह के हुक्म की इतनी बेकदरी। जहाँपनाह। खूब

श्री विष्णुप्रभाकर के साथ महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह।

हुकूमत की। मेरे भाई को छोटी-सी सूबेदारी आप न दे सके।''

''मलका, इतना गुस्सा न करो।'' बादशाह कुछ सकपका कर बोले- ''जुल्फिकार से पूछूँगा कि देरी क्यों हो रही है।''

''देरी क्या हो रही है हुजूर। जहाँपनाह। वह रिश्वत माँगते हैं। वह कहते हैं ''कोई भी सनद् तब तक नहीं दी जा सकती, जब तक उसके लिये फीस न दी जाय।'' मुझसे वह एक हजार सितारे देने को कह रहे हैं। मैंने किसी तरह दो सौ सितारें दे दी है, मगर वह तो पूरी एक हजार देने के लिए जिद कर रहे हैं।''

''अच्छे निकले दिल्ली के वजीर और उनके लड़के। सब रिश्वतखोर।'' लालकुँवरि ने कुछ व्यंग्य के साथ कहा।

''खैर। न्यामत, तुम्हें। सूबेदारी मिल जायगी और कल ही तुम्हें सनद् दे दी जायेगी। अब जाकर तुम नाव को डुबाने का इंतजाम करो। वह नाव तो बातों-बातों में ही इस किनारे आ पहुँची।''

''जहाँपनाह। जब मैं मुलतान का सूबेदार हो गया'' न्यामत खुश होता हुआ बोला ''तब एक और नाव के डुबाने का सरंजाम करने में क्या देर लगती है। अभी भरी नाव डुबो दी जायेगी। कितने ही मुए हैं, जिनके जीने से कोई फायदा नहीं, उन्हें बिठा-बिठा कर एक नाव भिजवाता हूँ। परन्तु मेरी सनद्!''

न्यामत जल्दी से खुशी-खुशी रवना हो गया।

***

दोपहर के बाद अँगड़ाई लेते हुए लालकुँवरि ने बादशाह से कहा -''यह लो, दोपहर भी हो गई। वक्त भी अच्छा है, क्या कहीं बाहर न चलोगे?''

''क्यों न चलेंगे? परन्तु कहाँ चलना है?''

''एक जगह चलना है, बहुत जरूरी बात है।''

''आखिर लाल। बताओगी भी कि योंही मैं बैठा पहेलियाँ सुलझाया करूँगा।''

''तुम्हें क्या करना है, तुम्हारे कोई खास फायदे की बात नहीं है, उससे तो केवल मेरा ही लाभ है। खैर, अब उसे जाने दो। अच्छा, शेख नासीरूद्दीन अवधी के तालाब पर आज नहाने चलेंगे।''

''वाह लाल। वहाँ नहाने की क्या खूब सूझी। क्या यहाँ का हम्माम अच्छा नहीं ''

''नहीं उसमें एक खास बात है। शेख जी ने उस तालाब में नहाने वालों के लिए खास बात बताई है।''

''क्या बात बताई है?'' अब कौन-सी तुम्हारी इच्छा पूरी न हुई लाल, जो तुम अब भी उसकी चाह लगाए हो।''

''क्यों, लाल को क्या लाल की चाह नहीं रही, जो तुम ऐसी बात करते हो?''

''लाल ! भूला, परन्तु इसके लिए क्या किया जाय? चलो, निजामउद्दीन की दरगाह पर चलें। वह अवश्य तुम्हें चाँद-सा बेटा देंगे। क्यों न सीकरी ही चलें? इतनी-सी बात के लिये इतना मान।''

''अच्छा, कहो जो मैं कहूँगी, वह मंजूर करोगे? तभी तुमसे बात करूँगी।''

''लाल ! क्या तुम्हें मेरा भरोसा नहीं है?''

''बोलो, सब बातें मानोगे, तब आगे बात होगी।''

''हाँ, मंजूर है।''

''तो सुनो, शेखजी के उस तालाब में यदि हम-तुम दोनों नहावें, तब हमारे अरमान पूरे होंगे, ऐसा कहते हैं। चलो न आज ही।''

''इसमें क्या बात थी, जो इतनी हिचकिचाहट हुई तुम्हें?''

''केवल इतनी ही बात कहना रह गई कि नंगे नहाना पड़ेगा।''

''यह बात है।''

बादशाह जरा रूक कर बोले - ''अगर चलना हो तो चलो न अभी।''

कुछ देर बाद सम्राट् तथा लालकुँवरि स्नान के लिये पहुँचे। दिल्ली के सम्राट् और उनकी प्रेयसी के साथ एक-दो साथियों तथा बाँदियों के अतिरिक्त कोई न था।

***

संध्या हो गई थी। सारी दिल्ली असंख्य बत्तियों की रोशनी से जगमगा रही थी। आज घी के दिए जल रहे थे। चाँदनी चौक आलोकित हो रहा था। दिल्ली निवासियों पर एक अनोखा पागलपन छा रहा था। बरसों बाद राग-रंग के दिन आए थे। उस मादक संध्या को, जब चाँदनी चौक में चहल-पहल हो रही थी सम्राट् तथा उनकी प्रेयसी लालकुँवरि एक रथ में बैठ कर आ पहुँचे। सारा दिन स्नान में तथा विभिन्न बाग-बगीचों में विहार करने में बीता था। संगीत तथा चुलबुलाहट भरे उस मदमाते जीवन के सम्राट् प्रेयसी को लिए बाजर में सौदा करने निकले।

रथ घूमता हुआ एक कुँजडिन की दुकान पर ठहरा। कुँजडिन का नाम जोहरा था। इस कुँजडिन की लालकुँवरि से मित्रता थी। शाही रथ को देख कर दौड़ी आई।

''कहो जोहरा! क्या-क्या सौदा बेच रही हो?''

''हुजूर ! कौन-सी चीज मेरे पास है जो नजर करूँ?''

''जोहरा! नखरे न करो। जहाँपनाह को तुम्हारी इन ककड़ियों का बड़ा शौक है। वे मतीरे भी तो बड़े स्वाद वाले हैं। हाँ, अनार भी तो होंगे। शरबत के लिये बेदाना अनार चाहिए।''

''हुजूर ! सारी दुकान ही आपकी है जो पसन्द हो, रथ में रख दूँ।''

''नहीं, रथ में नहीं, किले ही भिजवा देना। अब हम चलेंगे। जोहरा! अगर अच्छे फल न भेजे, तो लाल तुमसे खफा हो जायगी।''

''जहाँपनाह ! हुजूर की ही बाँदी हूँ। तो क्या कुछ भी जलपान न करेंगे?''

''नहीं जोहरा! हम जायेंगे, बहुत-सा काम है।''

''बाँदी आदाब करती है।''

रथ चल पड़ा और बादशाह कुछ अचकवाकर बोले- ''लाल ! सौदा तो ले लिया, लेकिन उसके दाम न दिये। उसे कुछ मोहरें तो दे दो। ओ! रथवान! जरा ठहरना।''

''दिल्ली के सम्राट् सौदा लेने जाय और बदले में दे कुछ सोने के टुकड़े! क्या जहाँपनाह हमेशा बेचारी जोहरा के यहाँ से फल नहीं मँगवाते?'' तिरस्कार के साथ लालकुँवरि ने कहा- ''अगर कुछ देना ही है, तो क्यों न एक जागीर दे दी जाय। बादशाह की कुँजड़िन को भी इज्जत चाहिए।''

रथ रुक गया। लालकुँवरि ने बाँदी से जोहरा को बुलवाया। घबड़ाई हुई जोहरा आई।

लालकुँवरि ने कहा- ''जोहरा! बादशाह ने खुश होकर तुम्हें जागीर दी है और मनसब भी दिया है। अब तुम पालकी में बैठकर किले आ सकोगी।''

''बाँदी दोनों हुजूर का शुक्रिया अदा करती है। मुझ नाचीज पर इतनी मेहरबानी।''

रथ एक बार फिर चलने को हुआ। लालकुँवरि ने अपनी बाँदी से कहा- ''तू यहीं उतर जा। किले चली जाना। हम घूमघाम कर बाद में चले आवेंगे।'' बाँदी उतर पड़ी। रथ रवाना हो गया। बाँदी स्तंभित खड़ी ताकती रही।

***

इस बार घूमता-घामता रथ एक गली में पहुँचा। उस जगमगाती हुई

श्री हंसराज भारद्वाज, कानून राज्यमंत्री के साथ महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह।

दिल्ली का यह कोना मनहूस-सी सूरत बनाये अँधेरे में जीवन बिता रहा था। उस अँधेरे को और उस गली को उबड़-खाबड़ देखकर लालकुँवरि को ताव आ गया। रथवान को रथ रोकने की आवाज देकर बादशाह से बोली ''हुजूर आली! देखिये, दिल्ली के ये मुए आज जैसी खुशी के दिन भी मातम मना रहे हैं। कौन-सा कारूँ का खजाना लुटा जा रहा था, जो उनसे अपने घर के सामने दिए भी न जलाए गए।''

बादशाह चुपचाप सुनते रहे, बाद में धीरे से बोले- ''लाल! इस झंझट से मैं हैरान हो जाता हूँ। यह कौन-सी दिन रात की आफत आज यह नहीं हुआ, कल वह करना बाकी रह गया। दिल्ली के तख्त-ताऊस पर बैठ कर भी यह सब बेगार करना पड़ती है। अगर दिए न जलाए, तो तुम्हीं क्यों न इसका प्रबंध कर लो। तुम्हारी देख-रेख में तो ये सारे उत्सव मनाये जा रहे हैं।''

लालकुँवरी को तैश आ गया। फौरन रथ वाले को आवाज दी कि उस घर के मालिक को बुलावे। काँपता-काँपता एक बूढ़ा हाजिर हुआ जिसके पहनने को पूरे वस्त्र भी न थे। वह घबरा रहा था। रथ के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

''क्यों तुम कैसे बदतमीज हो कि दिल्ली के बादशाह के सामने नंगे-बदन हाजिर हुए हो''

''हुजूर!हुजूर! कपड़े कहाँ से लाऊँ? बड़ी मुश्किल से गुजर चल रहा है।''

''इतना दिमाग तुम्हारा कि लालकुँवरि से हुज्जत करो।'' और रथवान की ओर मुड़कर दो जूते लगाने को कहा।

बूढ़ा पहले ही घबरा रहा था, दो जूते खाकर तिलमिला उठा। अब भागने की सोची, परन्तु लालकुँवरि ने हुक्म दिया कि उसे पकड़ कर लाया जाय, जब हाजिर किया गया तो वह फिर तमक कर बोली- ''बुढ़ऊ ! ये दिमाग तुम्हें कहाँ ले जायेंगे? पहले तो बादशाही हुक्म की अदूली की और उस पर बुलावें तो सुने नहीं?''

बूढ़ा रो पड़ा, पाँव पड़ने लगा, घिघिया कर बोला- ''हम बेचारों की क्या हिम्मत कि हम सरकार के हुक्म को न माने!''

''तब आज तुम्हारे घर पर अँधेरा क्यों है? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि आजकल बादशाह जहाँदरशाह की तख्तनशीनी का जशन हो रहा है?''

''हुजूर! हम बेचारों के पास तेल कहाँ, जो दिए जलावें।''

''तेल ! तेल ! जिसे देखो, वही कहता है कि तेल नहीं है, मगर मैंने यह हुक्म दिया था कि घी के दिए जलाए जायें। क्यों बे! आज सारे शहर में डौंडी पिटवाई गई थी न, क्या कान फूट गये थे जो नहीं सुनी''

''हुजूर घी कहाँ से लाऊँ ? यहाँ खाने को धान भी तो नहीं मिलता है।''

बहुत बात हो चुकी थी। लालकुँवरि ने लात मार दी। बेचारा बूढ़ा गिर पड़ा। रथ फिर चल पड़ा।

''इसी शंहशाही आफत के मारे ही तो मैं किले से भाग निकलता हूँ। '' बादशाह ने धीरे से कहा।

''ये सब कुत्ते बादशाह की नहीं सुनते, सो नहीं सही, अब मेरा भी हुक्म नहीं मानते।''

''रहने दो लाल ! ये सब बातें भुला दो। अब तो गुलबानू की दुकान आती होगी। कब तक यह सिर-फोड़ी करोगी, कुछ वक्त तो हँसी-खुशी में बितावें।''

''लालकुँवरि चुपचाप सुनती रही।

***

और शीघ्र ही गुलबानू की दुकान के सामने शाही रथ रुक गया। दिल्ली की एक गली में, अजमेरी दरवाजे के पास ही कोने में गुलबानू की दुकान है। उस अँधेरी गली के कोने पर यही चिराग जल रहे थे और उस अँधेरे को अधिक बढ़ा रहे थे। रात के दस बज चुके होंगे। गली में आने-जाने वालों की भीड़ कम हो चुकी थी। रथ को रुकता देखकर गुलबानू निकली और पूछा-

''किसका रथ है?''

''गुलबानू, अब तुम काहे को हमें याद करोगी?'' रथ से निकलती हुई लालकुँवरि बोली।

''लाल ! तुम यहाँ कैसे ?''

''घबराओ न गुल । मेरे साथ दिल्ली के बादशाह भी तो आए हैं'' और फिर रथ की ओर देखकर लालकुँवरि बोली, ''हुजूर! आइए न, यहाँ तो सब अपने ही हैं, कोई ख्याल न कीजिएगा।''

''बादशाह सलामत और मुझ नाचीज की दुकान पर।'' अचकचाकर गुलबानू बोली ''अब क्या करूँ?''

''गुल ! तुम तो अब भी निरी उल्लू की उल्लू रही। बादशाह कौन-से हौआ है जो तुम इतना डर रही हो'' धीरे से लाल ने कहा।

बादशाह रथ से उतर चुके थे और जब लालकुँवरि के पास पहुँचे, तो गुल बोली- ''बाँदी दिल्ली के बादशाह को आदाब करती है।''

''यहाँ भी यही सब कुछ लाल! क्या इससे कहीं भी पीछा न छूटेगा ? जिससे घबराकर हम यहाँ आए, वह आफत तो यहाँ भी सामने मिली'' जहाँदरशाह ने जरा खिन्न होकर कहा।

''नहीं हुजूर ! गुल से तो कहे बिना कैसे होता, परन्तु यहाँ कोई भी बात न होगी। मैं सब इंतजाम किये देती हूँ।'' गुलबानू को एक ओर ले जाकर लालकुँवरि ने कान में कुछ कहा और तब तीनों उस दुकान में पहुँचे।

गुलबानू लालकुँवरि की बचपन की सखियों में से एक थी। अब वह दिल्ली में शराब की दुकान चलाती थी। यहाँ दूर-दूर तक के पियक्कड़ इकट्ठे होते थे और गुलबानू की दुकान दिल्ली के दक्षिणी हिस्से में एक विशेष स्थान रखती थी।

नीची छत और वह भी सीधी-सादी जहाँ तहाँ धुएँ से काली हो गयी थी। बादशाह ने दरवाजे में घुसकर इधर-उधर नजर डाली। एकाध पियक्कड़ को पड़े देखकर उन्होंने लाल की ओर देखा। गुलबानू बोली- ''हुजूर ऊपर चला जाय। बादशाहों से क्या अर्ज करूँ, परन्तु ऊपर के कमरे में सब प्रबन्ध हो जायगा।'' सकड़ी सीढ़ियों से होकर बादशाह ऊपर के दालान में पहुँचे। वहाँ एक लम्बे-से दालान में सफेद फर्श बिछा हुआ था, एक कोने में मसनद लगी हुई थी, खस की तेज महक भरी हुई थी। मसनद के पास ही एक चाँदी की तिपाई पर कुछ बोतलें तथा एक झारी रखी हुई थी, कुछ प्याले भी धरे हुए थे। दीवार पर चारों कोनों में धीमी रोशनी वाली मोमबत्तियाँ जल रही थी। बादशाह ने जाकर मसनद के सहारे आसन लगाया, लालकुँवरि पास बैठ गई। प्याले सामने आए और भरे गए। लालकुँवरि ने गुलबानू की ओर देखकर कहा- ''गुल! कुछ गाना भी हो न?''

''हुजूर ! इस गली में कहाँ अच्छे गाने वाले मिलेंगे।''

''कैसे भी हो, बुलवाओ जरूर। अगर अच्छे गवैयों को ही सुनना होता, तो यहाँ क्यों आते? शराब के दौर के साथ कुछ नाच-गान भी तो होना चाहिए।''

''जैसी मर्जी !'' गुलबानू उठ कर प्रबन्ध करने चली। इधर बादशाह ने कहा-

''कहो लाल ! क्या खूब रही! इस जीवन में भी कुछ लुत्फ जरूर है। तो मजा यहाँ के इस प्याले में है, वह किले में सदियों पुरानी बोतलों में भरी, बरफ से ठंडी की हुई शराब में कहाँ ? और यहाँ कौन जानता है कि हम तुम कौन हैं ? कोई यह कहने वाला भी तो नहीं कि यह अच्छा है या बुरा ; इससे शाही तहजीब में खलल पड़ता है। उस जिंदगी से उकता कर ही तो मैंने तुमसे आज वहाँ से भाग कर कहीं अनजाने स्थान में ही शाम बिताने को कहा था।''

''हाँ हुजूर ! मुझे मालूम था कि यहाँ सब इंतजाम हो जायेगा और किसी को भी पता न लगेगा तभी तो यहाँ लाई हूँ। रही गुलबानू की बात से वह किसी से न कहेगी।''

''खूब ! खूब ! इसी बात पर एक-एक प्याला भरा जाय।''

लालकुँवरि ने शराब प्यालों में ढाली।

शीघ्र ही सीढ़ियों पर पैरों की आवाज सुन पड़ी और गुलबानू के पीछे-पीछे एक रंडी मय सारे साज के दालान में आती नजर आई।

''आदाब ! आदाब ! के बाद स्वर मिलाए गए तबला खड़का, सारंगी के तार झनझना उठे और उस रंडी ने खरखराते हुए गले से गाया-

''उफ् ! तेरी काफिर, जवानी जोश पर आई हुई।''

तीन चार प्याले पी चुके थे पुनः आज दिन भर की थकावट से बादशाह कुछ बदहवास हो रहे थे। गाने की इस तान को सुनकर एक बार फिर प्याला ढाला और कुछ चबेना चबाते हुए बोले-

''लाल ! कहो, अब भी मुझमें वही पुरानी मस्ती है न जो बार-बार उस मस्ताने जोबन की याद दिलाती है।''

''हुजूर ! इन पके हुए बालों को देखकर भी यह कैसे मानूँ ?''

''पके हुए बाल, लाल। खूब कही। तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ?''

''वाह हुजूर ! क्या मुझे यह भी पता नहीं है कि हुजूर खिजाब करते हैं?''

''खिजाब-हिजाब से क्या होना है लाल। यह तो दिल की बात है। देखो न, यही गाने वाली तो कह रही है-

''सिर से पाँव तक छाई हुई''

''क्या दिल उसमें नहीं आता है?''

लाल हँस पड़ी और पुनः प्याला ढालती हुई बोलती - ''खूब!'' और रंडी की ओर देखकर बोली- ''खूब शेर कहा, एक बार फिर सही।''

बादशाह ने प्याला उठाया ओठों तक लगाया, एक साँस में पी गए और अस्फुट ध्वनि में फिर बोले - ''लाल ! यह दिल की....'' लाल ने बादशाह की ओर देखा, वह झूम रहे थे, उनकी ओर कुछ देर तक देखती रही और उस अधूरे वाक्य को सुन कर कुछ सोचती रही। फिर धीरे-से उठकर गुलबानू को एक ओर ले गई और बोली- ''गुल ! अब देर हो रही है, बादशाह को भी नींद आ रही है, गानेवालों को अब रवाना कर दो।''

शीघ्र ही पुनः उस दालान में निस्तब्धता छा गई। बादशाह आँखें बन्द किए मसनद के सहारे बेहोश पड़े थे। जब सबको रवाना करने के बाद गुलबानू ऊपर आई तो लालकुँवरि ने कहा- ''गुल! अब तो चलेंगे। हाँ, बादशाह को किस प्रकार नीचे ले चलेंगे?''

''क्यों, क्या बेहोश हो गए हैं?''

''हाँ! जब पीने लगते हैं, तब यही हो जाता है। 50 बरस की उम्र और उस पर उस मस्ताने जोबन की वह हविस! रथवान तो होगा न उसे ही ऊपर बुलाओ।''

''परन्तु लाल! वह भी तो शराब पी रहा था। उसने माँगा, तो कैसे नाही करती उससे तो यह होना मुश्किल है। देखो, नीचे जाकर और किसी को बुलाकर लाती हूँ।''

''गुलबानू ! देखो, यह बात किसी को मालूम न होने पावे।''

''लाल ! जब तुम जा रही हो तो थोड़ी देर हो जाय तो क्या। आई हो तो एकाध प्याला और पी लो अच्छी शराब भी मेरी दुकान में है और कौन तुम रोज-रोज मेरे यहाँ आने वाली हो। अब तो लाल किले में रहने वाली ठहरी।''

''गुल !'' मैं नाहीं नहीं करती, देखो जल्द जाना है, फिर पहले भी पी चुकी हूँ।''

''लाल ! यह न होगा। एक आध प्याला ही सही बड़ी बढ़िया शराब है। चलोगी तो फिर लाल किले में भी इसी को याद करोगी। कहती हूँ फिर वहाँ भी मेरी ही दुकान से मँगाओगी। मैंने पहले नहीं निकाली कि बादशाह सलामत उस नशे में उसकी परीक्षा न कर सकेंगे, व्यर्थ बोतल खराब करने से क्या फायदा?''

बादशाह गहरी नींद में पड़े रहे और उधर प्याले भरे जाने लगे। लालकुँवरि ने एकाध प्याला गुलबानू को भी पिलाया।

''तो अब जाऊँगी, रथ मँगवाओ।''

''हाँ, अभी सब प्रबन्ध किए देती हूँ।''

शीघ्र ही गुलबानू एक हट्टे-कट्टे, लम्बे-चौड़े, काले हबशी को लिए आई और बादशाह की ओर ऊँगली करके बोली-

''अबे ! उस पियक्कड़ को उठाकर नीचे जो रथ खड़ा है, उसमें डाल आ। ये मुए न जाने क्यों इतना पी जाते हैं, जो उठवाकर भेजना पड़ता है।''

''बिल्कुल बेहोश पड़ा है'', उस हबशी ने उठाते हुए कहा- ''कोई नवाब जान पड़ते हैं।''

''तुझे इससे क्या, होंगे अपने घर के नवाब मेरी इस दुकान में किसकी दया हस्ती। दिल्ली का बादशाह भी आकर पड़ रहे तो उसे भी इसी प्रकार फिकवा दूँगी।''

''हबशी बादशाह को उठाकर चला और पीछे गुलबानू के साथ लड़खड़ाती हुई लालकुँवरि आने लगी। सीढ़ी उतरते-उतरते गुलबानू बोली- ''लाल ! बुरा न मानना यह सब इसीलिए कहा कि इन मुओं को कुछ खबर न पड़े?''

''गुल ! तुम भी क्या बात करती हो, ये बदनसीब शाहजादे और बादशाह, सब ऐसे ही हैं। इनमें धरा क्या है? नहीं तो...'' लालकुँवरि लड़खड़ा रही थी, दीवार संभालने लगी।

''रथ में डाल दिया'' नीचे उतरकर गुलबानू ने हबशी से पूछा।

''जी''।

''ऐ रथवान ?'' लालकुँवरि ने कहा।

''जी मलका साहिबा?''

''अब चलो लाल किले। रास्ता तो जानता है?''

''क्यों नहीं। वहीं से तो हुजूर और बादशाह सलामत को लाया था। दो प्याले पीकर ही क्या दिल्ली के रास्ते भूल जाऊँगा?''

मोतीलाल वोहरा बोहरा का स्वागत करते हुए।

''तो अब चली गुल'' लालकुँवरि ने रथ का परदा डालते हुए कहा, ''सिर चक्कर खा रहा है गुल! अब फिर कभी किले आना। यह लो मेरी अँगूठी, इसे बताना, तो तुम्हें आने देंगे। वहीं फिर बात करेंगे।''

आधी रात को दिल्ली की गली में एक बार फिर रथ चला, सम्राट् और उनकी प्रेयसी को लिए किले के लिये रवाना हुआ। सम्राट् बेहोश थे, उनकी प्रेयसी मस्त पड़ गई उसे नींद आ गई और गाडीवान भी मतवाला बना चला जा रहा था।

***

''क्यों जी ! कुछ सुना ?''

''क्या ?''

''देखो, बहुत ही खानगी बात।''

कान के पास मुँह ले जाकर सिपाही अपने साथी से बोला- ''बादशाह सलामत खो गए।''

''बादशाह खो गए।'' आश्चर्य के साथ वह साथी चीख पड़ा।

''जरा धीरे बोल भाई! सचमुच खो गए? दिल्ली में खो गए? नहीं भाई, कुछ समझ में नहीं आता। कल शाम को चाँदनी चौक में जोहरा की दुकान पर तो उन्हें देखा था।''

''तो यह भी कोई दिल्लगी है, जो तुमसे झूठ कहूँगा!'' खुदा की कसम, बिल्कुल सच बात है।''

***

''एरी सच तो बता बादशाह सलामत है कहाँ? क्या लालकुँवरि के महल में नहीं है? खोजे न डपट कर बाँदी से कहा।

''मुझे क्यों लाल-पीली आँखे दिखा रहे हो? मैं क्या जानूँ, बादशाह सलामत कहाँ हैं। न जाने कहाँ-कहाँ मलका के साथ गलियों में घूमते-फिरते है और न मिलें तो मुझसे पूछो। जाओ, पूछो न मलका से। रथ में बेहोश पड़ी थीं, उन्हें तो मुश्किल से उठाकर ले आई। मलका, बादशाह इन सबको अपनी फिकर नहीं। हम बाँदियों के सिर यह नया काम कि दिल्ली के बादशाह की भी फिक्र करें और संभाले कि कहीं खो न जायँ।''

''नालायक'' बदजात कहकर खोजे ने दो चपतें बाँदी के लगाई इसके हौंसले देखो, मलका को गालियाँ देती है।

बाँदी रोती, बड़बड़ाती चली गई।

खोजे ने जाकर खोज की, लालकुँवरि के महल में भी बादशाह न मिले। लालकुँवरि अब भी सो रही थी। बाँदी ने जाकर जगाया अर्ज की-

''हुजूर बादशाह सलामत का पता नहीं लग रहा है। सारे लाल किले को खोज डाला कहीं भी न मिले।''

''बादशाह सलामत? क्यों क्या कल नहीं लौटे?'' रथ में सुलाकर तो मैं लाई थी।''

''हुजूर हमें नहीं मालूम। बाँदी कहती है कि रथ से अकेले हुजूर को ही उतारा, उसे बादशाह सलामत का पता नहीं।''

''मुझे रथ से उतारा, याद नहीं पड़ता। गुलबानू ने बादशाह....'' कुछ रुक कर कहा ''हाँ-हाँ। बादशाह मेरे साथ लौटे तो थे। फिर?''

''कुछ मालूम हो तो बादशाह सलामत को ढूँढ़े।''

''मुए दिल्ली के बादशाह सलामत को ढूँढ़ने चले हैं? जरा बुलाओ तो न्यामत को।''

***

''न्यामत भाई, देखो तो बादशाह सलामत का पता नहीं लग रहा है।

''हाँ, कुछ मैं भी ऐसी ही गड़बड़ सुन रहा हूँ।''

''देखो, कल रात हम घूमने गए थे, रथ में अकेले थे, मैं भी सो गई थी, अब तो रथवाले से पूछने से ही पता चलेगा।''

''हाँ अभी पूछता हूँ, परन्तु मेरी सनद की जल्दी करना।''

''सनद-सनद मचा रखी है? बादशाह का पता चले तो वह सूबेदारी है। कल कहीं मुआ मर गया तो क्या करोगे?''

***

''अबे रथवाले, हरामजादे, नींद में ऐसा पड़ा है जैसे दिल्ली का बादशाह हो। क्या रात को नशा कर लिया था?'' इतनी आवाज देने पर भी जब रथवान न बोला तो न्यामत ने दस-पाँच गालियाँ देकर उसे दो लातें लगाईं।

रथवान हड़बड़ा कर उठा और सिर पर पगड़ी रखने भी न पाया था कि न्यामत ने उसकी गरदन पकड़ी और पूछा-''साले बता न बादशाह सलामत को कहाँ डाल आया''

''मैं क्या जानूँ हुजूर! लाल किले पहुँचा आया था।''

''किले में तो नहीं हैं? गए कहाँ? कहीं रास्ते में तो नहीं गिर गए?''

''नहीं हुजूर! सरकार लोगों की सवारी में कहीं ऐसी गफलत हो सकती है?''

''तो आखिर जहाँपनाह का पता लगे कहाँ?''

''तो क्या सरकार! लाल किले में नहीं उतरे?''

''उतरे होते तो यह रोना क्यों मचता? तुझसे मुए के घर मैं आता? नहीं पहचानता मुझे ? मैं ''मुलतान का सूबेदार'' हूँ।''

''हुजूर को न पहचानूँगा, तो जाऊँगा कहाँ। हुजूर। बादशाह सलामत रथ में तो सो रहे थे, अगर किले में नहीं उतरे, तो...।''

'रथ कहाँ छोड़ा?''

''हुजूर अस्तबल में।''

***

''देखिए हुजूर। मैंने ठीक कहा था न कि मैं ऐसी गफलत थोड़े ही कर सकता हूँ कि सवारियाँ रास्ते में उतर जायें या गिर पड़ें और मुझे पता न चले। देखिए, बादशाह सलामत तो रथ में ही लेटे हुए हैं।''

''क्या खूब!'' न्यामत बोला- ''दिल्ली के बादशाह लापता और मिलें सरकारी अस्तबल में रथ पड़े हुए। उन्हें संभाल कर उतारनेवाला भी कोई न मिला?''

बादशाह जहाँदरशाह पड़ा खर्राटे ले रहा था, बेखबर सो रहा था। उसे जगाते हुए न्यामत ने कहा- ''जहाँपनाह! हुजूर तो यहाँ लेटे हुए हैं और मुझे अभी तक मुलतान की सूबेदारी की सनद नहीं मिली।''

अँगड़ाई लेकर बादशाह ने करवट ली और आँखें मसलते हुए उठे और बोले- ''क्या कहा? सनद! मैं सनद देने वाला कौन? तुम? यह कौन-सी जगह है। ... हें! और कुछ देर के बाद - ''अरे, अब याद आई! मैं दिल्ली का बादशाह जहाँदार...हाँ, परन्तु यहाँ सरकारी अस्तबल में...अभी तो सुबह हुई है न?

''हाँ हुजूर !'' न्यामत बोला, ''जहाँपनाह, आप खो गए थे, इस सरकारी अस्तबल में हुजूर का पता लगा।''

'सप्तदीप' से साभार

डॉ. रघुबीर सिंह का साहित्य सृजन

अशोक कुमार सिंह, वाराणसी

रघुबीर सिंह इतिहासकार के साथ-साथ हिन्दी के सुविख्यात लेखक भी थे। उन्होंने हिन्दी-साहित्य में गद्य को चुना। उनकी गणना शुक्ल युग के सुप्रसिद्ध गद्यकारों में होती है। गद्यकाव्य में ऐतिहासिकता की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाले वे एकमात्र गद्यकार हैं।

संस्कृत में कथा और आख्यायिका के लिये गद्यकाव्य शब्द प्रयोग किया जाता है। काव्यात्मक गद्यभिव्यक्ति के लिये हिन्दी साहित्य में गद्य-गीत और गद्यकाव्य दोनों शब्द प्रयोग किये जाते हैं। अनुभूति की गहराई, भावावेश, कल्पना की प्रधानता, इतिवृत्तिहीनता, एकतथ्यता, ईषतस्पर्श (बुद्धितत्त्व की अवहेलना), गद्यसौष्ठव जैसी विशेषता से युक्त होने के कारण गद्यकाव्य हिन्दी साहित्य की अन्य विधा से अलग है। रघुबीर सिंह के शब्दों में ''गद्यकाव्य में प्रधान बातें विशेषतया भाषा, शैली एवं भाव होते हैं। उनको ठीक ढ़ंग से सँवारने के लिये गहरी अनुभूति, भाषा पर पूर्ण अधिकार एवं शब्द कौशल आवश्यक होता है। इसके लिये कोई सुझाव-निर्देश या नियम नहीं बनाये जा सकते हैं... विषय की नूतनता, शैली का अनूठापन एवं भावों की ताजगी ही गद्यकाव्य को महत्त्व दे सकते हैं। इनके बिना गद्यकाव्य सुन्दर होते हुए भी अमरत्व नहीं पा सकते।...''

हिन्दी-साहित्य में निबन्ध के विकास की दृष्टि से शुक्ल युग (1920-1940 ई.) उत्कर्ष काल माना जाता है। भाषा, शैली, विषय, स्वरूप, भाव की दृष्टि से भी इस युग में शैक्षणिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि विविध विषयों पर प्रौढ़एवं शक्ति सम्पन्न निबन्ध लिखे गये। यद्यपि शैली में भेद होने का कारण इस काल के निबन्धों का प्रमुख वर्गीकरण विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक रूप में किया जा सकता है।

उक्त निबन्धों में भावात्मक निबन्ध का सम्बन्ध हृदय से होता है। इसमें बुद्धि तत्त्व की अपेक्षा भावतत्त्व की प्रधानता होती है। इसलिये इसमें रागात्मकता अधिक होती है। निबन्धकार का मौलिक चिन्तन भावना का आश्रय लेता प्रतीत होता है। शुक्ल युग में भावात्मक निबन्धकारों की श्रृंखला में रघुबीर सिंह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'शेष स्मृतियाँ' ऐतिहासिक भावात्मक निबन्धों का एकमात्र उदाहरण है।

रघुबीर सिंह के अधिकांश निबन्ध भावात्मक है। उन्होंने 1927 से ही देश के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में विविध विषयों पर निबन्ध लिखना प्रारम्भ कर दिया था। वह स्वयं लिखते हैं 'मेरे गद्यकाव्यों का प्रारम्भ जुलाई, 1928 के लगभग हुआ। 'वीणा' का प्रकाशन तब आरम्भ हुआ। भावनापूर्ण काव्यमय भाव हृदय में उठते थे और उनको व्यक्त करने के लिये आवश्यक छन्दोगति या लय का अभाव ही था एवं वे गद्य में ही व्यक्त किये गये।''

मूलतया इतिहासकार होने के कारण रघुबीर सिंह ने इतिहास के विषयों को अपने निबन्ध का मुख्य विषय-वस्तु चुना। तथापि जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित निबन्ध भी लिखे।

प्रकाशन की दृष्टि से रघुबीर सिंह का प्रथम गद्यकाव्य संग्रह 'बिखरे फूल' (1933) है जिसमें 14 गद्यकाव्यों का संग्रह है। मूलरूप में, इसमें संग्रहीत लेखों का रचनाकाल फरवरी, 1929 से अक्टूबर, 1931 के बीच का है। वह स्वयं लिखते हैं ''अपने हृदय में उठने वाले भावों की तरंगों में जो कुछ भी मुझे सुन्दर प्रतीत हुआ जिन-जिन भावों ने मेरे हृदय पर चोट की उन्हें ही मैंने अपने शब्दों में प्रकट करने का प्रयत्न किया है। अपने भावों में जो सर्वसुन्दर था वही यहाँ संग्रहीत हुआ है, अतः मेरे भावोद्यान में जो-जो पुष्प खिले थे, वे यहाँ एकत्र कर दिये गये हैं।''

'बिखरे फूल'' गद्यकाव्य संग्रह 'यौवन की देहली पर' में यौवन के आगमन, 'जीवन के द्वार पर' में बीते यौवन एवं 'यौवन की खुमारी' में यौवन व मदिरा के प्याले की तुलना के रूप में जीवन की तीन अवस्थाओं - बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था का चित्रण है। 'कब का खड़ा पंथ निहारू' में प्रियतम की प्रतीक्षारत प्रेमी की मनोदशा के रूप में प्रकृति में प्रभु की रहस्यात्मक अनुभूति का चित्र है। 'आदेश' में श्रीकृष्ण के निष्काम कर्म का संदेश एवं 'क्या पुनः गीता का सन्देश न सुनाओगे?' में गीता के संदेश की प्रासंगिकता का वर्णन है। 'अतीत-स्मृति' में पुष्प के माध्यम से अतीत की स्मृति सुरक्षित रखने, 'वह प्रवाह' में गंगा के प्रवाह, 'वह सौन्दर्य' में पुष्प और भ्रमर के माध्यम से जीवन की नश्वरता, 'उसका कारण' में पुष्प की भावना, 'दो बातें' एवं 'निराशा' में दीपक और पतंगे के सम्बन्ध, 'दुराशा' में सागर की लहरों और 'बिखरे फूल' में देव को अर्पण किये जाने वाले सूत्र में पिरोये गये फूलों के बिखर जाने जैसे विषयों के रूप में अन्योक्ति है।

साहित्य-जगत् में उक्त संग्रह का स्वागत हुआ। जयशंकर प्रसाद को यह संग्रह पसंद आया। विशेषकर 'जीवन के द्वार पर' गद्यकाव्य में उन्हें 'सुन्दरता' दिखाई पड़ी। सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा 'बिखरे फूल' के कुछ फूल मैं बहुत पहले ही सूँघ चुका था। आज उनकी संग्रहीत सौरभ पान करने का अवसर मिला। आपके उदार लेख में पाठक एवं नवयुवकोचित हृदय का परिचय उसकी प्रत्येक पंखुड़ी से मिलता है। पाठक को यह हार्दिक परितृप्त कर सकता है। इसमें मुझे रत्ती भर संदेह नहीं....। हिन्दी की ओर आपका अनुराग देखकर किस हिन्दी प्रेमी को प्रसन्नता एवं गर्व न होगा।''

'बिखरे फूल' गद्यकाव्य संग्रह का पुनर्प्रकाशन 1947 में 'जीवन धुलि' शीर्षक से हुआ। उसमें पुराने 14 गद्यकाव्य के अतिरिक्त 4 अन्य गद्यकाव्य को भी सम्मिलित कर लिया गया। इनमें 'आशा' में आशा का महत्त्व, 'पथिक'। क्या रात भर भी न ठहरोगे?' 'इस अंधेरी रात में किधर चलें' एवं 'परदेशी! तुम क्या जानो प्रीत की रीत?' में पथिक से ठहरने की अभ्यर्थना सम्बन्धी लेख है।

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के शब्दों में 'यह गद्य-गीत आकार में छोटे हैं, अन्यथा भावना और अभिव्यक्ति का ढ़ंग वही (शेष स्मृतियाँ सदृश्य) है। एक ओर आरम्भ के गद्यगीतों में जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के चित्र हैं तो दूसरी ओर पीछे की अन्योक्तियों में जीवन के सत्य का उद्घाटन है। भाषा शैली वही है जो 'शेष स्मृतियाँ' की है हाँ, यहाँ उनका विचारक का रूप अधिक निखरा है जो स्वाभाविक है, क्योंकि उत्तरोत्तर भावुकता की परिणति चिन्तनशीलता में ही होती है।''

1938 में 'सप्तदीप' नामक निबन्ध संग्रह का प्रकाशन हुआ। इसमें विविध विषयों पर कुछ 6 निबन्ध 1 कहानी संग्रह संग्रहीत किया गया है। इस संग्रह की रचनाओं में से एकमात्र 'सेवासदन से गोदान तक' निबन्ध छोड़कर शेष कहीं न कहीं पूर्व में प्रकाशित हो चुके थे। चूँकि इस संग्रह में विविध विषयों पर विविध प्रकार के निबन्ध हैं, अतएव इन्हें किसी विशेष कोटि में नहीं रखा जा सकत है।

'आधुनिक हिन्दी काव्य' शीर्षक लेख में समकालीन परिस्थिति का साहित्य पर प्रभाव की चर्चा है जिसके क्रम में 20वीं शताब्दी में भारत में व्याप्त भीषण असन्तोष के फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य में उभरी प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख किया गया है।

महामहिम उपराष्ट्रपति डॉ.एस.राधाकृष्णन के साथ महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह।

'वह प्रतीक्षा' लेख कविवर बचनेश जी के 'शबरी' काव्य की भूमिका के रूप में लिखा गया है। सप्तदीप का यही एकमात्र भावात्मक निबन्ध है।

'जब बादशाह खो गया था' रघुबीर सिंह द्वारा लिखित एकमात्र कहानी है जो एक ऐतिहासिक कहानी है। जिसकी सब घटनाएँ सच हैं, मात्र उन घटनाओं के अनुक्रम आदि में कहीं-कहीं परिवर्तन कर दिये गये हैं। इसमें मुगल सम्राट् जहांदारशाह के शासनकाल में लाल कुँवर के प्रभाव को विषयवस्तु बनाया गया है।

'सेवा सदन से गोदान तक - साहित्यिक संस्मरणात्मक लेख है। इसमें प्रेमचंद द्वारा रचित एवं रघुबीर सिंह द्वारा पठित पुस्तकों के सम्बन्ध में उनके विचार व संस्मरण हैं। मिलने की अदम्य इच्छा होते हुए भी वे उनसे कभी नहीं मिल सके तथापि उनकी रचना एवं उनके सम्बन्ध में अपने संस्मरणों में लिखा है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में 'यह निबन्ध उस महान् कलाकार के प्रति मेरी यह तुच्छ श्रद्धांजलि है।'

'इतिहास शास्त्र' नामक निबन्ध ऐतिहासिक चिन्तन से सम्बन्धित है जिसमें उन्होंने इतिहासशास्त्र पर (जिस पर आजकल चर्चा हो रही है) अपने विचार प्रकट किये हैं और वे चाहते हैं कि इस विषय में सम्बन्धित विद्वान् इस पर विचार करें।

'शिमला से' एक वर्णनात्मक लेख है। इसमें उन्होंने अपनी शिमला यात्रा का रोचक वर्णन किया है। उन्होंने स्वयं इस अपने प्रारम्भिक दिनों का सर्वप्रथम सुन्दर निबन्ध स्वीकार किया हैं यह लेख हेमचन्द जोशी के लेख 'बर्लिन से पेरिस' की शैली से प्रभावित होकर लिखा गया है।

'भारतीय इतिहास' में राजपूतों के इतिहास का महत्त्व 'एक ऐतिहासिक व्यावहारिक चिन्तन से सम्बन्धित निबन्ध है जिसमें इतिहास की प्रवृत्ति, राजपूतों के गुण दोष, भारतीय इतिहास में राजपूतों का योगदान एवं राजपूत इतिहास लेखन पर उनके अपने विचार हैं।

'सप्तदीप' का पुनर्प्रकाशन 1950 में 'जीवण कण' शीर्षक से हुआ जिसमें 'सप्तदीप' के 6 निबन्ध एवं 1 कहानी में से 3 निबन्ध - आधुनिक हिन्दी काव्य, इतिहास-शास्त्र एवं भारतीय इतिहास में राजपूतों के इतिहास का महत्त्व को हटा दिया गया और उनके स्थान पर फ्रांस की राजक्रान्ति के कुछ रक्तरंजित पृष्ठ, राजपूतों का उत्थान एवं कविवर प्रसाद के कुछ संस्मरण निबन्ध सम्मिलित कर दिये गये।

'फ्रांस की क्रान्ति के कुछ रक्तरंजित पृष्ठ' ऐतिहासिक निबन्ध है जिसमें नामोरूप फ्रांस की राज्य क्रान्ति (1789) का वर्णन है। यह निबन्ध सर्वप्रथम 1928 ई. में 'चाँद' के सुप्रसिद्ध 'फ्रांसी अंक' में प्रकाशित हुआ था जिसे तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया था। अपने इसी लेख के कारण रघुबीर सिंह ब्रिटिश सरकार के कोपभाजक बन गये थे।

'राजपूतों का उत्थान' भी ऐतिहासिक निबन्ध है। इसमें राजपूतों की उत्पत्ति एवं उनके इतिहास का सर्वेक्षण है। यह निबन्ध भी 'महारथी' के 'राजपूत अंक 1928' में प्रकाशित हो चुका था। इसमें कुछ संशोधन कर दिया गया है।

'कविवर प्रसाद के कुछ संस्मरण' निबन्ध जयशंकर प्रसाद के मृत्यु के समय लिखित लेखक के उनके सम्बन्ध में संस्मरण हैं। लेखक का प्रसाद जी के साथ सम्पर्क 1930 में हुआ था जो मृत्यु पर्यन्त बना रहा।

रघुबीर सिंह की हिन्दी-साहित्य की अमर कृति 'शेष स्मृतियाँ' हैं जो सर्वप्रथम 1939 में प्रकाशित हुई। इसमें कुछ 5 ऐतिहासिक गद्यकाव्य है। इनमें प्रथम चार का प्रकाशन 1930 से 1932 के मध्य पत्रिकाओं में हो चुका था। 'सरस्वती' एवं माधुरी में प्रकाशित इन लेखों ने पं. रामचन्द्र शुक्ल को आकर्षित किया। इन्दौर में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 24वें अधिवेशन के दौरान 22 अप्रैल, 1935 को हुई भेंट में आचार्य शुक्ल ने स्वयं ही लेखक से कहा कि इस संग्रह की भूमिका किसी और से नहीं लिखाना। वह मैं लिखूँगा। 'आगे रघुबीर सिंह लिखते हैं कि तब तक मैंने सोचा भी नहीं था कि भूमिका लिखवायी जाय या नही और लिखवायी जाये तो किससे ? परन्तु पं. रामचन्द्र शुक्ल के यों कह देने पर कि भूमिका (प्रवेशिका) वे स्वयं लिखेंगे, इस बारे में कोई प्रश्न रह ही नहीं गया था। अपनी अस्वस्थता के कारण आचार्य शुक्ल अपनी 36 पृष्ठीय प्रवेशिका 26 जुलाई 1938 को लिख पाये। यह न केवल प्रवेशिका है, वरन् शेष स्मृतियों की समीक्षा भी है। यों यह ग्रन्थ प्रथम बार 1939 में प्रकाशित हो सका। राजमल बोरा के शब्दों में ''इस प्रवेशिका को पढ़ने से लगता है कि 'शेष स्मृतियाँ' के निबन्ध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की साहित्यिक अभिरुचि के अनुकूल है। समीक्षक को अपनी अभिरुचि के अनुकूल लेखक मिले और इसी तरह के लेखक को उसके लेखन के अनुकूल समीक्षक भी मिले, ऐसा संयोग प्रायः दुर्लभ होता है। 'शेष स्मृतियाँ' के सम्बन्ध में इन दोनों का लेखन और समीक्षक का उत्तम संयोग हुआ।

इस ग्रन्थ में संग्रहीत निबन्धों की विषयवस्तु मुगलकालीन स्थापत्य है। इनमें ताज (ताजमहल), एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ (फतेहपुर सीकरी), अवशेष (आगरा के महल), तीन कब्रें (लाहौर में स्थित जहाँगीर, नूरजहाँ और अनारकली) और उजड़ास्वर्ग की आवश्यकता नहीं कि ये पाँचों स्थान जिस प्रकार मुगल सम्राट् के ऐश्वर्य विभूति, प्रताप, आमोद-प्रमोद और भोगविलास के स्मारक हैं, उसी प्रकार उनके अवसाद, विषाद, नैराश्य और घोर पतन के। मनुष्य की ऐश्वर्य विभूति सुख व सौन्दर्य की वासना अभिव्यक्त होकर जगत् के किसी छोटे या बड़े खण्ड को अपने रंग में रंगकर मानुषी सजीवता प्रदान करती है। देखते-देखते काल उस वासना के आश्रय मनुष्यों को हटाकर किनारे कर देता है। धीरे-धीरे ऐश्वर्य विभूति का वह रंग भी मिटता जाता है। जो कुछ शेष रह जाता है वह बहुत दिनों तक ईंट पत्थरों की भाषा में एक पुरानी कहानी कहता रहता है। संसार का पथिक मनुष्य उसे अपनी कहानी समझकर सुनता है, क्योंकि उसके भीतर झलकता है जीवन का नित्य और प्रकृत स्वरूप।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अभिमत है ''अतीत की स्मृति में मनुष्य के लिए स्वाभाविक आकर्षक है। अर्थ परायण लाख कहा करे कि 'गड़े मुरदे उखाड़ने से क्या फायदा' पर हृदय के लिए अतीत मुक्ति लोक है जहाँ वह अनेक बंधनों से छूटा रहता है और अपने शुद्ध रूप में विचरता रहता है।

वर्तमान हमें अन्धा बनाये रहता है, अतीत बीच-बीच में हमारी आँखें खोलता रहता है।... बीती बिसारने का अभिप्राय है जीवन की अखण्डता और व्यापकता की अनुभूति का विसर्जन, सहृदयता और भावुकता का भंग केवल अर्थ निष्ठुर क्रिया।....अतीत की कल्पना स्मृति किसी सजीवता प्राप्त करके अवसर पाकर प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप धारण कर सकती है जिसका आधार या तो आप्तशब्द (इतिहास) अथवा अनुमान होता है।... हमारा भारतीय इतिहास न जाने कितने मार्मिक वृत्तों से भरा पड़ा है। मैं बहुत दिनों से इस आसरे में था कि सच्ची ऐतिहासिक कल्पना वाले प्रतिभा सम्पन्न कवि और लेखक हमारे हिन्दी साहित्य जगत् में प्रकट हो। किसी काल की सच्ची ऐतिहासिक कल्पना प्राप्त करने के लिये उस काल के सम्बन्ध रखने वाली सारी उपलब्ध सामग्री की छानबीन अपेक्षित होती है।

..... महाराजकुमार की दृष्टि उस कालखण्ड के भीतर रमी है जो भारतीय इतिहास में 'मध्यकाल' कहलाता है। आपकी कल्पना और भावना को जगाने वाले उस काल के कुछ स्मारक चिह्न हैं, यह देखकर इसका भी आभास मिला कि आपकी कल्पना किस ढ़ंग की है। जान पड़ा कि वह स्मृति स्वरूपा है... महाराजकुमार ऐसे इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् के हृदय में ऐसा भावसागर लहराते देख मैं तृप्त हो गया। विद्वता और भावुकता का ऐसा योग संसार में अत्यन्त विरल है।''

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने हिन्दी में गद्यकाव्य का प्रवृत्तिगत विभाजन करते हुये उसे प्रेमात्मक, राष्ट्रीयता, ऐतिहासिक, सौन्दर्यमूलक एवं स्फुट जैसे मुख्य भागों में विभाजित किया है। इस रूप में उन्होंने रघुबीर सिंह की 'शेष स्मृतियों' को ऐतिहासिक वर्ग में रखा है। उनके अनुसार ''ऐतिहासिकता की प्रवृत्ति से सम्बन्धित गद्यकाव्य लिखने वाले एकमात्र लेखक महाराजकुमार डॉ. रघुबीर सिंह हैं। उनकी 'शेष-स्मृतियाँ' इस दृष्टि से एक अमर कृति है। इस क्षेत्र में आपकी रचनायें इतनी प्रौढ़हुई कि किसी दूसरे को लेखनी उठाने का साहस ही न हुआ। मुगलकालीन इमारतों का आधार लेकर लेखक ने अपनी भावुकता का स्रोत बहाया है और पत्थरों के भीतर हृदय की धड़कन का संचार कर दिया है।'' किन्तु प्रभाकर माचवे आलोचना करते हुए कहते हैं कि ''इतिहास के अध्येता होने के कारण उनकी कल्पना पर अतीत का गहरा रंग है। कहीं-कहीं तो वे पुनरूत्थानवादी जैसे लगते हैं। इसी कारण उनकी रचनाएँ यद्यपि है तो आधुनिक काल की परन्तु लगती है उन्नीसवीं सदी की सी।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि ''यह बात नहीं कि महाराजकुमार की दृष्टि अपने समकक्ष जीवन पर ही, शक्तिशाली सम्राटों के ऐश्वर्य, विभूति, उत्थान, पतन आदि पर पड़ी हों, सामान्य जनता के सुख-दुःख की ओर न मुड़ी हो। आपके भीतर जो शुद्ध मनुष्यता की निर्मल ज्योति है उसी के उजाले में आपने सम्राटों के जीवन को भी देखा है। यद्यपि जिन पाँचों स्थानों को आपने सामने रखा है उसका सम्बन्ध इतिहास प्रसिद्ध शासकों से है, फिर भी उनके अतीत ऐश्वर्य मद का स्मरण करते समय आपने उन विचारों का स्मरण किया है जिनके जीवन का सारा रस निचोड़ कर वह मद का प्याला भरा गया था।''

'शेष स्मृतियाँ' की भाषा शैली पर अपना विचार प्रकट करते हुए पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने लिखा है कि 'भाषा की दृष्टि से 'शेष स्मृतियाँ' हिन्दी की बहुमूल्य कृति है। हमारी सम्मति में श्री माखनलाल चतुर्वेदी के 'साहित्य देवता' के बाद भावात्मक निबन्ध शैली में गद्यकाव्य की प्रौढ़कृतियों में इसका ही नाम लिया जा सकता है। लम्बे-लम्बे भावात्मक और कल्पनात्मक निबन्धों में महाराजकुमार ने करुणा और विषाद को मूर्तिमान कर दिया है। महाराजकुमार ने पतन के चित्र दिये हैं, अतः उनके निबन्धों में शोक की सरिता प्रवाहित है, जबकि चतुर्वेदी जी में बलिदान और राष्ट्रीयता के कारण ओज है। महाराजकुमार का गद्य फुलवारी के सहज प्रस्फुटित पुष्प गुच्छ जैसा है, जबकि चतुर्वेदी जी का गद्य वनप्रदेश के स्वाभाविक सौन्दर्य को आत्मसात् करने वाली उपत्यका की भाँति है। महाराजकुमार में अलंकारों की चमक-दमक अधिक है, जबकि चतुर्वेदी जी के कथन की भंगिमा ही ऐसी है कि अलंकार उनके लिए अनावश्यक हो गये हैं। महाराजकुमार को रूपक, मानवीकरण और उत्प्रेक्षा तीन अलंकार विशेष प्रिय है...अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, उपमा आदि अलंकार कहीं-कहीं आये हैं, लेकिन अलंकारों से भी अधिक महाराजकुमार की भाषा शैली का आकर्षण उनकी वर्णन शैली है, जिसमें एक दर्द और कराह का स्वर झंकृत है। विलासपूर्ण भवनों का तथा उसके शासकों की मानसिक स्थिति का सजीव चित्र अंकित करने की उनकी वर्णन शैली का चमत्कार स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है यद्यपि उनकी शैली विक्षेप शैली है तथापि लययुक्त प्रवाही भाषा की उनमें कमी नहीं है....उनकी भाषा में अरबी, फारसी, संस्कृत आदि शब्दों का ऐसा मिश्रण है कि कहीं से उनकी भाषा शिथिल और गतिहीन नहीं जान पड़ती। एक-सा प्रभाव चलता जाता है। पौराणिक संकेतों द्वारा भाषा में वे और भी चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं।''

ओंकारनाथ शर्मा के अनुसार, ''भाषा तथा शैली की दृष्टि से इनकी 'शेष स्मृतियाँ' हिन्दी-निबन्ध साहित्य की अमूल्य कृतियों में से एक है। भावात्मक निबन्धों के अन्तर्गत यह महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है। 'शेष स्मृतियाँ' में मुगलकाल का एक विशद् वर्णन मिलता है, जो सम्राट् अकबर से लेकर बहादुरशाह तक प्रसार पाता है। इन निबन्धों में करुणा और विषाद का सजीव चित्रण हुआ है।''

'शेष स्मृतियाँ' के सम्बन्ध में प्रभाकर माचवे कहते हैं ''उनका स्वाद चतुरसेन शास्त्री के 'अंतःस्थल' या रायकृष्णदास के 'साधना' या 'छायापथ' से भिन्न था। रघुबीर सिंह के निबन्धों में 'इतिहास रस' था, कल्पना की उड़ान थी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'क्षुधित पाषाण' जैसी रोमान्टिक जिज्ञासा जागृत करने और बनाये रखने की कुतूहलता भी थी।''

इस प्रकार रघुबीर सिंह की प्रकाशित पुस्तकों में 'बिखरे फूल' (संशोधित संस्करण जीवन धूलि) एवं 'शेष स्मृतियाँ गद्य काव्य संग्रह है जिनमें कुल 23 गद्य काव्य है। 'सप्तदीप' (संशोधित संस्करण 'जीवन कण') एक कहानी एवं 9 विविध विषयों से सम्बन्धित निबन्ध संग्रह है। राजमल बोरा ने उनके उक्त निबन्ध संग्रहों को 3 भागों में वर्गीकृत किया है। प्रथम - व्यक्तिपरक अनुभूतियों से युक्त निबन्ध, द्वितीय- ऐतिहासिक स्मृति स्वरूप और तृतीय - ऐतिहासिक चिन्तन से सम्बन्धित। प्रथम भाग में 'बिखरे फूल' द्वितीय भाग में 'शेष स्मृतियाँ' एवं तृतीय भाग में 'सप्तदीप' के लेख संग्रह होते हैं।

रघुबीर सिंह जिस समय गद्य काव्य का सृजन कर रहे थे, उसी समय 'हिन्दी साहित्य में गल्प' नामक पुस्तक की रचना के लिये प्रयत्नशील थे। इस पुस्तक के विषय में इन्दौर से प्रकाशित 'वीणा' के अक्टूबर 1930 में एक सम्पादकीय नोट भी प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ में विशिष्ट हिन्दी-गल्प लेखकों के बारे में एक-एक अध्याय लिखा जाना था। इस हेतु उन्होंने जयशंकर प्रसाद से सम्पर्क भी साधा था। इसी क्रम में उन्होंने जयशंकर प्रसाद के प्रकाशित 3 गल्प संग्रहों की विवेचना का कार्य आरम्भ किया था। उनमें एक 'आकाश-दीप' की विवचेना 'सुधि'- में प्रकाशित हुई। इसमें इस संग्रह पर बेबाक टिप्पणी प्रस्तुत की गई है।

इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता कि उनकी गल्प सम्बन्धी पुस्तक रचना के सम्बन्ध में क्या प्रगति हुई। कालान्तर में रघुबीर सिंह ने 'कहानी : नई-पुरानी' शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दी के 15 प्रतिनिधि कहानीकारों की

जी.एस.सरदेसाई, के.एम.मुंशी एवं जदुनाथ सरकार के साथ महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह।

श्रेष्ठतम कहानियों का संग्रह निकाला। इसमें चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' जयशंकर प्रसाद की 'ममता', प्रेमचन्द्र की 'पूस की रात', विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की 'ताई', राय कृष्णदास की 'अन्तःपुर का आरम्भ', भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'मिठाईवाला, जैनेन्द्रकुमार की 'एक गौ', भगवतीचरण वर्मा की 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी, श्रीराम शर्मा की 'नायक का चुनाव', सुभद्रा कुमारी चौहान की 'गौरी', उपेन्द्र नाथ 'अश्क' की 'डची', होमवती देवी की 'माँ', रामचन्द्र तिवारी की 'पिशाचीकारा', विष्णु प्रभाकर की 'मेरा वतन' एवं कमला चौधरी की कहानी 'अधूरा चित्र' को सम्मिलित किया गया था।

इस संग्रह के आरम्भ में 'कहानी-कला और उसका विकास' शीर्षक के अन्तर्गत विवेचना दी गई है तथा 'हिन्दी-कहानी साहित्य का प्रारम्भिक विकास' को संक्षेप में लिखा गया है। तत्पश्चात् कहानीकार का परिचय एवं उसके अन्तर्गत सम्बन्धित लेखक की संग्रहीत कहानी का संक्षिप्त विषयवस्तु प्रस्तुत किया गया है।

इसके अतिरिक्त सरस्वती, माया, महारथी, वीणा, सुधा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि में उनके अनेक निबन्ध, समीक्षाएँ, ऐतिहासिक लेखादि प्रकाशित होते रहे हैं। उनका अपने युग के प्रख्यात साहित्यकारों आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, निराला, वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, रामधारीसिंह 'दिनकर' आदि से निकट सम्पर्क रहा है। प्रेमचन्द्र से प्रत्यक्ष न मिल पाने का दुःख उन्हें सदैव रहा है। इन साहित्यकारों से पत्रादि व्यवहार में प्रायः उनकी रचना के सम्बन्ध में विचार भी प्रकट किया करते थे, यथा- 'आपकी कृति आँसू ने मेरे हृदय पर वह धारा बहायी है कि रोके रूकती नहीं, सुखाये सुखती नहीं। आपकी कविता मेरे लिये विशेष आकर्षण की वस्तु है।'

'आकाशदीप' की प्रथम कहानी 'आकाशदीप' ने मुझे पूर्णतया मुग्ध कर दिया।

'तितली' को एक साँस में पढ़गया। यह बहुत सुन्दर उपन्यास है। भावों के संघर्ष को प्रदर्शित करने का पूर्ण प्रत्यन किया है और उसमें लेखक को पूरी सफलता मिली। भारतीय जीवन को जिस सुन्दरता के साथ प्रदर्शित किया है, विशेषताया नारी जीवन को, उसके विषय में कुछ कहना व्यर्थ है। 'तितली' आधुनिक जीवन की सच्ची प्रतिनिधि है।

'ध्रुवस्वामिनी' में आपके लिखे अन्य नाटकों की सब विशेषताएँ विद्यमान हैं।'

'आज की डाक से' इन्द्रजाल की एक झाँकी देख पड़ी, उसके तमाशे तो आज रात को देख पाऊँगा।.... निरन्तर चलती हुई ट्रेन के उस डिब्बे की उस जगमगाती रोशनी में इन्द्रजाल का तमाशा खूब देखने को मिलेगा।'

'अब अधिक देर तक उस 'कामायनी' से अलग रहने को जी नहीं चाहता।'

जयशंकर प्रसाद एवं सुमित्रानन्दन पन्त की कविताएँ उन्हें सर्वाधिक पसंद थी। इन कवियों की भावनाओं में बहकर उन्होंने गद्यकाव्य की रचना की। उन्हीं के शब्दों में ''अंग्रेजी काव्य के साथ ही इन प्रारम्भिक दिनों में जिस काव्य ने मेरी भावनाओं को उभारा था वह था प्रसाद का 'आँसू'।'' वे अपने प्रथम गद्य काव्य संग्रह के प्रथम गद्यकाव्य 'यौवन की देहली पर' एवं द्वितीय गद्यकाव्य 'जीवन के द्वार' का आरम्भ प्रसाद की कविता से एवं 'जीवन के द्वार' का अन्त पन्त की कविता से करते हैं।

इस प्रकार रघुबीर सिंह ने हिन्दी गद्य साहित्य की विविध विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई और शुक्ल युग के प्रतिष्ठित गद्य लेखकों में अपना स्थान बनाया। गद्य लेखन में भावात्मक विधा के वे श्रेष्ठ गद्यकार हैं और ऐतिहासिक प्रवृत्ति का प्रतिनिधि करने वाले आज भी वे एकमात्र गद्यकार हैं।

आश्चर्य का विषय है कि शुक्ल युग की प्रतिष्ठित गद्यकार की लेखनी सहसा 'शेष स्मृतियाँ' के प्रकाशन के पश्चात् ठप-सी हो जाती है। हिन्दी-साहित्य जगत् को इस बात का दुःख है कि पिछले पचास साल में उन्होंने इस क्षेत्र में कुछ नहीं लिखा।

संभवत रघुबीर सिंह का व्यक्तित्व साहित्यकार एवं इतिहासकार के बीच झूलने लगा था। अपने युग के प्रतिष्ठित निकटवर्ती लोगों का एक ओर जहाँ विछोह हो रहा था, दूसरी ओर जदुनाथ सरकार जैसे पारखी द्वारा उन्हें इतिहासकार के रूप में गढ़ने का कार्य प्रारम्भ हो चुका था। अनेकानेक साहित्यकारों के व्यक्तित्व से प्रभावित रघुबीरसिंह के व्यक्तित्व पर इतिहासकार जदुनाथ सरकार दिनों दिन भारी पड़ते गये। अपने निकट सम्पर्कों एवं निरन्तर पत्रादि के माध्यम से अन्ततः सरकार रघुबीर सिंह को एक इतिहासकार बनाने में सफल हो गये और यों हिन्दी-साहित्य उस प्रसिद्ध साहित्यकार की सेवा से अर्द्धशताब्दी तक वंचित ही रह गया।

जदुनाथ सरकार से सन्निकटता के कारण रघुबीर सिंह एक इतिहासकार के रूप में प्रतिष्ठित होते गये और हिन्दी-साहित्य की ओर से कुछ उदासीन-सा हो गये, किन्तु उनके भीतर साहित्यकार की प्रतिभा हिलोरे मारती रही। यह साहित्यिक प्रतिभा उनकी कुछ ऐतिहासिक कृतियों में स्फुटित होती रहीं। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण राजस्थान इतिहास से सम्बन्धित उनकी एक अमिट कृति 'पूर्व आधुनिक राजस्थान' है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अपने युग में जो स्थान कविता और नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का है, उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र का है, आलोचना और विचारात्मक निबन्ध के क्षेत्र में रामचन्द्र शुक्ल का है, वही स्थान भावात्मक निबन्ध के क्षेत्र में रघुबीर सिंह का है और जहाँ तक ऐतिहासिक भावात्मक गद्यकाव्य का सम्बन्ध है, अपने युग के पूर्व अपने युग में एवं युग के पश्चात् भी वे इस क्षेत्र के एकमात्र हिन्दी साहित्यकार है।

सुधी लेखकों/इतिहासविदों की दृष्टि में डॉ. रघुबीरसिंह का कृतित्व

डॉ. रघुबीरसिंह महाराजकुमार सीतामऊ, मध्यप्रदेश के ही नहीं, वरन् देश के भी जाने-माने इतिहासज्ञ-साहित्यकार थे। आपकी विद्वता की ख्याति मालवा, मध्यप्रदश ही नहीं, बल्कि भारत की सीमाओं को लाँघकर विदेशों में पहुँची है। राजघरानों की विलासिता से उस युग में राजपरिवार के सदस्य होते हुए भी उन्होंने, शिक्षा, इतिहास और साहित्य सृजन में जो उपलब्धियाँ और ख्याति अर्जित की वह प्रशंसनीय है। उनकी ये उपलब्धियाँ महाकाव्यकालीन राजा जनक और मालवा के राजा भोज की याद दिलाती हैं।

महाराजकुमार राजा-नवाबों के मध्य इतिहासकार-साहित्यकार और इतिहासवेत्ता-साहित्यकारों में महाराजकुमार थे। वे साहित्यविदों में इतिहासज्ञ और इतिहासकारों में साहित्य सर्जक थे। साहित्य और इतिहास का जो सुन्दर समन्वय उन्होंने किया वह अद्वितीय है। अक्सर ऐसा कम ही होता है कि एक अच्छा इतिहासकार साहित्य सृजन भी सफलतापूर्वक करे। प्रसिद्ध साहित्यकार की इतिहास पर प्रायः पकड़ ढीली होती है। मगर महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिंह इसके अपवाद थे। दोनों क्षेत्रों में उनकी समान रूप से गति थी। ऐतिहासिक विषयों की पृष्ठभूमि पर उन्होंने जिन रचनाओं का प्रणयन किया वे सदैव साहित्य की अनमोल धाति रहेगी।

अपनी प्रसिद्ध कृति ''मालवा में युगान्तर'' के माध्यम से पहली बार मालवा और उसके इतिहास को भारतीय एवं विश्व इतिहास के नक्शे पर स्थान दिलाने का एकमात्र श्रेय डॉ. रघुबीरसिंह को है। सन् 1947 के पूर्व के स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न चरणों को उन्होंने न केवल अपने सामने घटित होते देखा, वरन् राजकीय मर्यादाओं और सीमाओं के बावजूद स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति अपनी रुचि और सहानुभूतियों का स्पष्ट इजहार किया। परिणामस्वरूप अंग्रजों की कुटिल कूटनीति का वे शिकार भी हुए।

डॉ. रामचन्द्र शुक्ल, पं. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री के साथ जहाँ उन्होंने हिन्दी साहित्य को जीया, वहीं उन्होंने सर यदुनाथ सरकार के पट्ट शिष्य के रूप में डॉ. रशब्रुक विलियम्स, उनके शिष्य डॉ. ईश्वरीप्रसाद, डॉ. विसेंट स्मिथ, डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी, डॉ. ताराचंद जैसे ख्याति प्राप्त इतिहासकारों के साथ काम किया है। उन्होंने इतिहास के नभ के इन सितारों के बीच अपना स्थान बनाया। भारतीय इतिहास के बेहतरीन एवं अमूल्य वक्त के वे हस्ताक्षर थे।

- डॉ. शरद पगारे

डॉ. रघुबीरसिंह का जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण था। सादा भोजन एवं सादा परिधान ही आप पसंद करते थे। स्वाध्याय ही आपका व्यसन था। स्वभाव की शालीनता, निश्छलता, सहज ही व्यक्ति को प्रभावित कर लेती थी। वार्तालाप में आपकी आत्मीयता झलकती थी। समय की पाबन्दी, अथक् परिश्रम, अध्ययनशीलता, साहस आदि के गुण आपको अपने माता-पिता से प्राप्त हुए। चरित्र निर्माण, सत्यवादिता एवं अनुशासन को आप अधिक महत्त्व देते थे। प्रमादी व्यक्तियों के प्रति आप वज्र से भी अधिक कठोर थे तथा सजग कर्तव्यनिष्ठ के प्रति फूल से भी अधिक कोमल स्पष्टवादिता आपके स्वभाव का अंग थे। किसी भी व्यक्ति या संस्था के गुण-दोषोंको आप बिना किसी भेदभाव के प्रकट करने में दुराव-छिपाव या संकोच नहीं करते थे।

डॉ. साहब राजसी ठाठ-बाट, ऐश्वर्य एवं विलासिता से कौसों दूर थे। आप राजकुमारों के लिये ऐसी शिक्षा के पक्षपाती थे जिससे वे दयालु बनें, प्रजा की भलाई करें एवं सुमार्ग की ओर प्रवृत्त हों। आपकी मान्यता थी कि - ''यदि कोई सामान्य व्यक्ति अपने जीवन को नष्ट कर दे तो समाज को कोई विशेष हानि नहीं होती, किन्तु जब कोई नरेश अपनी उद्दाम प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर विनाश पक्ष की ओर अग्रसर हो जाए तो वह अपने ही को नहीं, किन्तु अपनी प्रजा को भी विनाश की ओर ले जाता है। बाल्यकाल से ही प्रायः राजकुमारों का जीवन सुख में बीतता है और उनके हितेच्छु जो वास्तव में उनके कट्टर वैरी होते हैं, उन्हें यह कहकर आलसी बना देते हैं अब एक राजा के घर जन्म लेकर शिक्षा प्राप्त करने व अन्य तकलीफ़ उठाने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे विचार उन्हें ज्ञान के प्रकाश से दूर रखते हैं और वे यह नहीं देख पाते कि उनका कर्त्तव्य क्या है? वे यह भूल जाते हैं कि शासन करना अपनी प्रजा की रक्षा करना है, न कि भोगासक्ति तथा असंयम की पराकाष्ठा।....गरीबों की आह ही राजा तथा उसके समस्त परिवार को नष्ट करने में समर्थ होती है। इसकी साक्ष्य इंग्लैण्ड, फ्रांस और रूस की राज्य क्रान्तियाँ स्पष्टतया दे रही है।

- गौरीशंकर दुबे

''आज भी इन सफेद पत्थरों से आवाज आती है - ''मैं भूला नहीं हूँ।''

आज भी उन पत्थरों में न जाने किस मार्ग से होती हुई पानी की एक बूँद प्रतिवर्ष उस सुंदर साम्राज्ञी की कब्र पर टपक पड़ती है, वे कठोर निर्जीव पत्थर भी प्रतिवर्ष उस साम्राज्ञी की मृत्यु को याद कर मनुष्य की करुण कथा के इस दुःखांत को देखकर पिघल जाते हैं और उन पत्थरों में से अनजाने एक आँसू ढलक पड़ता है।

आज भी यमुना नदी की धारा समाधि को चूमती हुई भग्न मानव जीवन की वह करुण कथा अपने प्रेमी सागर को सुनाने के लिये दौड़ पड़ती है। आज भी उस भग्न हृदय की व्यथा को याद कर कभी-कभी यमुना नदी का हृदय प्रदेश उमड़ पड़ता है और उसके वक्षःस्थल पर भी आँसुओं की बाढ़आती है।'' ये पंक्तियाँ डॉ. रघुबीरसिंह द्वारा लिखित ताज निबन्ध से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों से मेरा परिचय प्रायः 45वर्ष पूर्व हुआ था। तब से इन्हें न जाने कितनी बार पढ़ा होगा। इन्हें पढ़कर काव्य रस की अनुभूति होती रही है। आँखों के आगे मुगल सम्राट् शाहजहाँ और उसकी प्रेयसी मुमताज महल और मृत प्रेयसी की स्मृति में निर्मित भव्य ताजमहल का चित्र बार-बार आँखों के सामने घूमा है। डॉ. रघुबीरसिंह द्वारा लिखित कालजयी कृति शेष स्मृतियाँ हिन्दी गद्य काव्य की उत्कृष्ट कृति है। यह पुस्तक 1934 में लिखी गई थी। उस समय डॉ. रघुबीरसिंह की आयु 26 वर्ष थी। एक भावुक हृदय था। राजकुल का वैभव था। तरुण हृदय कल्पना के पंख लगाकर भारत के मध्ययुग में मुक्त विचरण करने के लिए उड़ा। वहाँ उसे जो कुछ मार्मिक दृश्य देखने को मिले, जो कुछ द्रवीभूत प्रसंग सुनने को प्राप्त हुए, जो कुछ करुण-कथाएँ कानों में टकराई, उसने अपनी भावुक शैली में उन्हें लिपिबद्ध कर दिया। इन संस्मरणों को हजारों लोगों ने पढ़ा और सराहा होगा। यह सचमुच खेद की बात है कि डॉ. रघुबीरसिंह का हिन्दी गद्य साहित्य का अनुपम योगदान हिन्दी साहित्य के इतिहास में समुचित रीति से रेखांकित नहीं हुआ है।

- विश्वप्रकाश गुप्त

लाहौर में सर जदुनाथ के साथ महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह।

महाराजकुमार के निबन्धों में उनकी साहित्यिक अभिरुचि जीवित है। साहित्य से आरम्भ कर वे इतिहास की ओर आगे बढ़े। उनमें साहित्यिक अध्ययन ऐतिहासिक पद्धति शोधपरक वृत्ति दिखलाई देती है। महाराजकुमार साहित्य के भीतर से इतिहास को उजागर करते रहे हैं। उनके गुरु यदुनाथ सरकार ने साहित्य को बहुत महत्त्व नहीं दिया, किन्तु महाराजकुमार ने साहित्य के भीतर इतिहास को खोजा है। हिन्दी के मध्यकालीन काव्यों का उन्होंने अनुशीलन किया और उसमें पाए जाने वाले ऐतिहासिक तथ्यों की मीमांसा उन्होंने की है। उन्होंने किसी पुस्तक की भूमिका यों ही नहीं लिखी उसको पढ़ा और बाद में उन्हें जो अनुभव हुआ, उसी के आधार पर भूमिका लिखी। उनकी भूमिकाएँ भी निबन्धों के रूप में है। उनका संकलन-प्रकाशन अभी होना है। और फिर उनकी भूमिकाएँ लम्बी-लम्बी भी है। वे प्रशस्ति परक न होकर विषय परक है और तथ्यों की ऐतिहासिक मीमांसा करने वाली हैं। यों महाराजकुमार को साहित्य के अध्ययन का लाभ इतिहास लेखन में हुआ है। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने जो कार्य किया वह निबन्ध लेखन तक ही सीमित है और निबन्ध भी उन्होंने उन दिनों में लिखे जब जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, निराला, महादेवी वर्मा आदि छायावादी कवि अपनी रचनाएँ लिख रहे थे। प्रेमचंद की रचनाएँ भी वे साहित्यिक अभिरुचि के साथ पढ़ते रहे हैं। इससे उनकी भाषा को ललित रूप प्राप्त हुआ है। महाराजकुमार का गद्य भाव-प्रवण है। उसमें अनुभूतियों को साकार करने की क्षमता है। बाद में साहित्य के क्षेत्र को छोड़कर जब महाराजकुमार इतिहास के ग्रन्थ लिखने लगे तो उन ग्रन्थों की भाषा में साहित्यिक स्पर्श अपने आप अवतरित हो गया। उनकी ऐतिहासिक पुस्तकों में ऐतिहासिक पात्रों के प्रति उनकी आत्मीयता के दर्शन हो जाते हैं। इतिहास शुष्क नहीं रहता और उनकी इतिवृत्तात्मकता मात्र की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता, अपितु इतिहास सजग होकर पाठकों के सामने अवतरित होता है। साहित्य के अध्ययन के कारण या साहित्यिक स्पर्श के कारण इतिहास लेखन का गद्य भी प्राणवान हो गया है। उनके इतिहास ग्रंथों को पढ़ने में साहित्यिक आस्वादन मिलता है।

- राजमल वोरा

डॉ. रघुबीरसिंह का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा से युक्त रहा। वे एक ही समय में साहित्य, राजनीति, इतिहास, चित्रकारी एवं अन्य कलाओं से सम्बद्ध रहे। वे राजनीति और विधान दोनों क्षेत्रों में अभिव्यक्ति रखने वाले विद्वान् शासक रहे हैं, अतः उन्होंने भारतीय वैधानिक विकास के साथ देशी राजवाड़ों की समस्याओं का भी गंभीरता से अध्ययन किया। साहित्यकार के रूप में महाराजकुमार ने सन् 1927 से ही पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक और ऐतिहासिक निबन्ध लिखने आरंभ कर दिये थे। ऐतिहासिक गद्यकाव्य लिखने वालों में वे ही एकमात्र महत्त्वपूर्ण लेखक थे। उनकी ''शेष स्मृतियाँ'' ही एक ऐसी गद्यकाव्य कृति है, जो अतीत के मनोरम संस्कारों से सराबोर है। ''बिखरे फूल'' के अधिकांश गद्य गीतों को ''जीवन धूलि'' में समेट लिया गया है। केवल चार अध्याय ''आशा'' पथिक क्या रात भर भी न ठहरोगे'', ''इस अँधेरी रात में कहाँ चलें'' परदेसी तुम क्या जानो प्रीति की रीति'' आदि जीवन धूलि में जोड़े गये हैं। ''बिखरे फूल'' के शीर्षक भावाभिव्यक्तियों की भिन्नता के सूचक हैं - यौवन की देहली पर, जीवन के द्वार पर, यौवन की खुमारी, कब का खड़ा पंथ निहारूँ, क्या पुनः गीता का संदेश न सुनावोगे, अतीत स्मृति, वह प्रवाह, वह सौन्दर्य, उसका कारण, दो बातें, निराशा, दुराशा तथा बिखरे फूल।''''यौवन की देहली पर'' काव्य खण्ड में महाराजकुमार ने एक महत्त्वाकांक्षी युवक में उद्दाम वासनाओं के भयंकर झंझावात से उत्पन्न मानसिक अशांति का वास्तविक स्वरूप अंकित किया है। शिशु धीरे-धीरे युवा होता है और संसार के सुख-दुःख से परिचित होने लगता है। वह ज्यों-ज्यों संसार के अधिक समीप जाता है, ज्यों-त्यों उद्वेगशील होता है। उसका अति सुंदर चित्रण लेखक ने किया है।

- डॉ. मीरा दुबे

हर महान् व्यक्तित्व में विरोधी गुणों का अद्भुत सम्मिश्रण रहता है। महाराजकुमार भी इस मान में विरोधाभासों से सम्पन्न थे। वे राजवंश के थे, किन्तु कट्टर देशभक्त थे। तत्कालीन प्रसिद्ध पत्रिका ''चाँद'' के जिस फाँसी अंक को ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था, उसमें उनका फ्रांसीसी सैनिक क्रान्ति पर भी लेख था जिसके कारण अंग्रेज हुकूमत उनसे रुष्ट रही। वे महराजकुमार थे, किन्तु खादी के वस्त्रों में सदा सादगी की मूर्ति बने रहे। रियासती पृष्ठभूमि होने पर भी वे प्रगतिशील विचारों के धनी थे। ऐश्वर्य सम्पन्न जीवन को ठुकरा कर उन्होंने कठोर सैनिक जीवन अपनाया और 1941 में केप्टन तथा 1942 में मेजर बने। वे इतिहास के उच्च कोटि के साधक थे, किन्तु दूसरी ओर साहित्य पर अनेकों सम्मानों से विभूषित भी थे। उन्होंने न केवल भारत के अतीत की खोज की बल्कि भारत के तत्कालीन वर्तमान (विशेषतः मध्यभारत के संगठन) एवं भविष्य को भी सजाने-सँवारने हेतु अपना अमूल्य योगदान दिया। राज्यसभा में वे सफल सांसद भी सिद्ध हुए। यह कहा जा सकता है कि वे इतिहास, राजनीति और साहित्य की त्रिवेणी के अनोखे संगम थे। भारत के अतीत-वर्तमान एवं भविष्य को उन्होंने देश की एकता के सूत्र में बटने में प्रमुख भूमिका निभाई। यदि सीतामऊ रियासत की भाँति जम्मू-कश्मीर एवं भारत की अन्य हर रियासत में उनके समान उदार देशप्रेमी सपूत जन्म लेता तो भारत का नक्शा बदल गया होता, भारत का इतिहास बदल गया होता, भारत का वर्तमान और भविष्य बदल गया होता।

- डॉ. चित्रा चतुर्वेदी 'कार्तिका'

महामना महाराजकुमार डॉ. श्री रघुबीरसिंहजी को कुछ लोग सामन्ती परम्परा का ध्वंसावशेष कहा करते थे। परन्तु ऐसे लोग यह नहीं जानते थे कि महाराजकुमार ने उस जड़ीभूत परम्परा को किस सीमा तक बदल दिया था। उन्होंने अपने पिताश्री महाराजा रामसिंहजी के गोलोकवासी होने पर महाराजकुमार से महाराजा बनने की ताजीम को नकार दिया था और अपने स्थान पर अपने सुपुत्र को गद्दीनशीन करा दिया था। कदाचित् तब उनके हृदय में यही कामना रही होगी कि उन्होंने जिस संकल्प को साकार करने की धारणा दृढ़की थी, कहीं वह महाराजा जैसे राजसी ठाठ-बाट में उलझकर नष्ट न हो जाय।

- नागेश मेहता

साक्षात्कार

धार्मिक विश्वास चाहे जो हो संस्कृति नहीं बदलती

महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह से शिक्षाविद् जीवनसिंह ठाकुर द्वारा लिया गया एक पुराना साक्षात्कार

इतिहास तथा साहित्य का शायद ही कोई ऐसा विद्यार्थी हो जिसने डॉ. रघुबीरसिंह जी का नाम न सुना हो। जिंदगी के आठवें दशक में हजारों-हजार साल के इतिहास में उसी तरह मुखातिब है जिस तरह वे अपनी युवावस्था में रहे हैं। दिमागी तौर से उसी तरह चाक चौबंद हैं। आज सीतामऊ का श्री नटनागर शोध संस्थान भारतीय इतिहास का महत्त्वपूर्ण तीर्थ बन चुका है। मालवा के महान् विद्रोहकालीन अभिलेख ग्रंथ (डॉ. रघुबीरसिंह जी द्वारा संपादित) का विमोचन करने म.प्र. के राज्यपाल प्रो. के.एम. चाण्डी (अप्रैल 5, 1986 ई. को सीतामऊ) पधारे थे। उक्त ग्रंथ तत्कालीन मालवा में 1857 के महान् विद्रोह की सटीक, महत्त्वपूर्ण जानकारी देता है। इस अवसर पर रघुबीर लायब्रेरी में डॉ. रघुबीरसिंह जी से मैंने वर्तमान परिस्थितियों, इतिहास, संस्कृति पर काफी लम्बी चर्चा की थी। इस चर्चा में उभरे प्रश्न और उनके जवाब साम्प्रदायिकता जैसे साँप, विघटनकारी तत्त्वों तथा अनैतिक राजनीति से जूझने-समझने की प्रेरणा भी देते हैं।

आज का जो दौर है उसे राजनीतिक लोग, अन्य सामाजिक कार्यकर्ता अपने तरीके से परिभाषित कर रहे हैं, लेकिन इतिहासकार की दृष्टि से भारत का वर्तमान किस रूप में है?

जीवनसिंह जी मैं आज के दौर को देख कर परेशान हूँ, लेकिन निराश नहीं। आज जो हो रहा है, उसमें नेतृत्व की खामियाँ रही हैं जो दृढ़ता, गहराई लोगों में पहले थी, वह उन लोगों के साथ ही खत्म हो गई है। मैं आशान्वित हूँ कि हम इस भयावह संकट से उबर पाएँगे।

बाबा आमटे एक विशुद्ध सेवक हैं, उन्होंने भारत जोड़ो यात्रा प्रारंभ की...क्या इसे एक नया मोड़ माना जाएगा? क्योंकि आज के हालातों ने उन्हें सड़क पर उतरने को मजबूर कर दिया है?

देश में अंदरूनी ताकत है। बाबा आमटे का जनता के बीच जाना इसका प्रतीक है। जब उन्होंने देखा कि पंजाब में अव्यवस्था है, असम में गड़बड़ हुई...और भी अन्य चीजें थी। वे सोचने लगे विघटनकारी ताकत ज्यादा हावी न हो, अतः वे अपनी शक्ति के साथ उतर पड़े यह एक प्रतीकात्मक कदम है। वस्तुतः यही करना तो व्यापक स्तर पर चाहिए। उन्होंने सोचा मुझे आगे बढ़ना चाहिए। कुछ करना चाहिए।

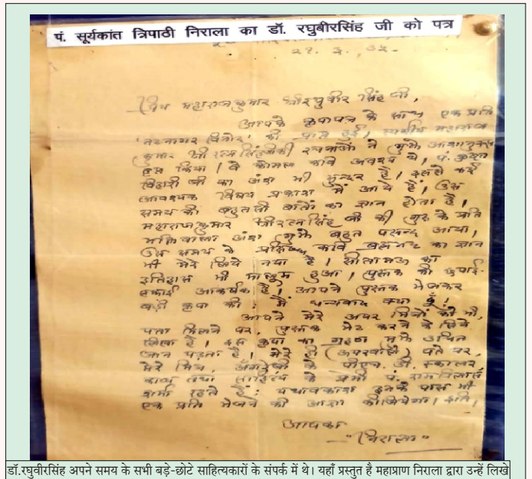

डॉ.रघुवीरसिंह अपने समय के सभी बड़े-छोटे साहित्यकारों के संपर्क में थे। यहाँ प्रस्तुत है महाप्राण निराला द्वारा उन्हें लिखे गये पत्र की छायाप्रति।

पं.जवाहरलाल नेहरू, गृहमंत्री श्री गोविंद बल्लभ पंत के साथ महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह।

हर बार यह कहा जाता है कि राष्ट्रीय एकता को निहित स्वार्थी वर्ग तोड़ता है। हम देखते हैं कि ये तबका हमेशा बना रहता है। ऐसा क्यों?

कुल जमा बात यह है कि आज चरित्र का संकट है। यही संकट भयावह है, इसीलिए यह कहा जाता है कि निहित स्वार्थी तबका गड़बड़ करता है। निहित स्वार्थी तो अपना काम करेगा, लेकिन हम उसे समाप्त करने में किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इसी तारतम्य में जानना चाहूँगा कि जब भी राष्ट्रीय एकता पर आँच आती है तो यह कहा जाता है कि अंग्रेजों ने इतिहास को विकृत करके पेश किया है, इसीलिए गड़बड़ होती है।

ऐसी बातें जवाबदारियों से भागने का नाम है। यह सच है कि अंग्रेजों ने अपना महत्त्व बढ़ाने या स्वार्थ साधने के लिए लिखा। उन्होंने इतना विकृत नहीं किया। हर चीज में अंग्रेज नहीं था। हमारी नीतियों में ही कहीं गड़बड़ है। तथ्य वही है....अंग्रेज उन्हें जिस तरीके से इस्तेमाल करते थे, वह गलत था। सवाल इतिहास के लिए तथ्य और तटस्थता जरूरी होती है। इससे सही स्थिति का आकलन हो सकता है। राष्ट्रीय एकता की धारा सभी युगों में रही है। उसे आज सामने लाने की जरूरत है।

जब सभी मानते हैं कि इतिहास को अंग्रेजी साम्राज्यवादियों ने बिगाड़ा है। अब तो अपनी सरकार है। वह विगत अड़तीस सालों से

महामहिम राष्ट्रपति डॉ.राजेन्द्र प्रसाद एवं सदस्यों के साथ महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह।

कदम क्यों नहीं उठाती?

अंग्रेजों ने चूँकि समस्त फायदे अपनी तरफ मोड़े थे। अतः उन्होंने सही इतिहास को विकृत जरूर किया, लेकिन इतना नहीं, जितना कहा जाता है। आजादी के बाद प्रयास जरूर हुए, लेकिन सरकार, इतिहास को अपने दृष्टिकोण से लिखना चाहती थी। अतः मामला वहीं रह गया। जिस दिन पूर्वाग्रह खत्म होंगे शायद स्थिति सुधरे.....

क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आज जो हिदू-मुसलमानों में फूट डालने की कोशिश हो रही है वह कोई ऐतिहासिक ग्रंथि है या राजनीतिक षड़यंत्र ?

वही मामला है। सत्ता वाला मामला है। हमारे राजनीतिज्ञों को फोबिया है। रही हिन्दू-मुसलमानों की बात उनमें झगड़ा हो ऐसा कोई कारण नहीं है। स्थानीय हिन्दू-मुसलमान में सांस्कृतिक तथा रक्त सम्बन्ध है। साझी संस्कृति है। विदेशी मुसलमानों का स्थानीय मुसलमान से घाल-मेल करना गलत है। वरना आक्रमणकारी तथा भारतीय मुसलमानों में हम फर्क नहीं कर पाएँगे, तो झगड़ा बढ़ेगा। ग्रंथियाँ पैदा होंगी। हिन्दू-मुसलमानों के बीच ऐतिहासिक ग्रंथि नहीं है। यह लड़ाई-झगड़ा राजनीतिक फोबिये के कारण है।

आप तो इतिहासविद् हैं मैं इतिहास के बारे में आपको बताऊँ यह तो संभव नहीं फिर भी ऐसा सोचता हूँ कि भारत में विभिन्न समयों में विभिन्न विचारधाराएँ प्रविष्ठ होती रहती हैं। एक तरफ सत्ता का संघर्ष था। दूसरी तरफ सूफी संतों की प्रेम, सौहार्द, साहित्य की धारा बह रही थी। विशेष कर भक्तिकाल में हिन्दू संतों, मुस्लिम सूफियों, साहित्यकारों ने राष्ट्रीय मुख्य धारा का निर्माण किया।

सत्ता संघर्ष हमेशा रहा है। राजनीतिक धारा सत्ता की लड़ाई है, लेकिन जो स्वार्थहीन रहते हैं वे धर्म को आड़े नहीं आने देते। हम देखते हैं कि संतों ने राजाओं के गुस्से या राजनीतिक प्रभाव की कभी परवाह नहीं की। सूफी संतों ने निरंकुश मुस्लिम नवाबों, बादशाहों की कतई फिक्र नहीं पाली। वे जनता के बीच प्रेम, एकता का प्रचार करते थे। जबकि सत्ता धर्म का इस्तेमाल तलवार, घृणा फैलाने में कर रही थी। सवाल निःस्वार्थ होने का है। आज भी धर्म दंगों, फँसादों के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। जैसा पहले होता था। सत्ता यही खेल खेलती थी। आज भी यही खेल बदस्तूर जारी है, लेकिन संतों, साहित्यकारों ने, चिश्तियों, जायसी, रसखान आदि ने मुख्य धारा में सशक्त योगदान किया है। सत्ता से नाजायज कुछ प्राप्ति की भावना बनी रहेगी, तब तक धर्म भी चाहे जिस तरह इस्तेमाल होता रहेगा। भारत के हिन्दू-मुस्लिम संतों को हुकूमत से न पद की इच्छा थी, न धन की, इसलिए वे देश के लिए बहुत कुछ कर सके।

क्या कभी आपने सोचा था कि हिन्दू-सिख आपस में लड़ेंगे ?

सबसे पहली बात तो यह है कि हिन्दू-सिख अलग नहीं हैं। इसको पृथक्-पृथक् बताना ही साम्प्रदायिकता है। आप सही सोचिये ''सिख'' हिन्दू की रक्षा तथा धर्म रक्षा का पर्याय था। प्रत्येक हिन्दू दसों गुरुओं को ईश्वर का अवतार मानता है। मैंने कभी सोचा नहीं था कि कभी इस तरह की खूँरेंजी होगी। वाकई ये बेहद गंभीर और विचलित करने वाला तथ्य है। मैं अभी भी यह कह सकता हूँ कि ये हिन्दू-सिख द्वंद्व नहीं है। इस वक्त शरारतपूर्ण प्रचार को निरन्तर तोड़ना होगा।

सिख संतों ने यानी गुरुनानक से संत सिपाही गुरु गोविंदसिंह तक सभी ने समस्त भारत की बात कही है, न कि सिर्फ पंजाब की आज ऐसा क्यों हो रहा है कि ये संतों को सिर्फ ''सिखों'' का बताया जा रहा है?

बिल्कुल सही है। गुरुओं ने कभी नहीं कहा है कि वे सिखों के गुरु हैं। ये बात ही नहीं थी। वे अत्याचार से लड़ने वाली तमाम कौमों के गुरु थे। मैं तो यह चाहता हूँ कि गुरु ग्रन्थ साहब का हिन्दी अनुवाद प्रचारित करना चाहिए ताकि देश को हकीकत पता चले कि उसमें भारत के दर्शन, संस्कृति, धर्म का जबर्दस्त सार है। ग्रंथ साहब तो सिंधी हिन्दुओं का भी ग्रंथ है। हिन्दुओं में प्रथा थी कि वे तीन-चार बेटों में से एक को गुरु गादी को अर्पण करते थे। जहाँ बच्चे की मानता करते हुए कहा जाता था कि ''लड़के को हम गुरु का शिष्य (सिख) बनाएँगे। आज यदि उन महान् पूजनीय गुरुओं को सिर्फ पंजाब के सिखों तक सीमित किया जाता है तो यह गुरुओं का निरादर करने जैसी बात है...यह बात राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित है। जैसे मैंने अन्य संदर्भ में ऊपर कहा है।

आमतौर पर यह प्रचारित किया जाता है कि धर्म परिवर्तन से राष्ट्रीयता बदल जाती है यानी व्यक्ति की निष्ठा विदेशी हो जाती है, यह कहाँ तक सच है?

मैं इस बात से कतई सहमत नहीं हूँ कि धर्म परिवर्तन से निष्ठा बदल जाती है। उपासना पद्धति कुछ भी हो तहजीब स्थानीय होती है। धर्म, संस्कृति से मिलकर एकाकार हो जाता है। भारत में ऐसा ही हुआ है। आपसे एक बात कहना चाहूँगा मुगलों ने इस्लाम जरूर कबूला था, लेकिन उन्होंने अरबों को महत्त्व नहीं दिया। चंगेज हलाकू ने इस्लामी सभ्यता का केन्द्र बगदाद लूटा था। वे भी तो मुसलमान हैं। फिर क्यों लूटा? जहाँ तक धर्म का प्रश्न है सभी धर्म भारतीय रंग, तहजीब में घुल-मिल गए हैं। इस्लाम तो पूर्णतया हिन्दुस्तानी हो

राज्यपाल श्री.के.एम.चाण्डी के साथ महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह।

डॉ.के.एन.काटजू एवं विदेशी मेहमानों के साथ महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह।

डॉ.ईश्वरी प्रसाद एवं डॉ.चन्द्रभूषण त्रिपाठी के साथ महाराजकुमार डॉ.रघुबीरसिंह।

गया है। पाकिस्तान की सभ्यता तो भारतीय है। तुलनात्मक रूप से देखा कि हिन्दुस्तानी ईसाई और मुसलमान अरब से पूर्णतया भिन्न हैं। उपासना पद्धति कोई भी हो तो उससे क्या फर्क पड़ता है? हाँ, एक बात और याद आई, पाकिस्तान में आज भी मुसलमानों में अपनी जाति में ही शादी का रिवाज है। पूर्व राजपूत थे वे अपने ढ़ंग का मुसलमान राजपूत ही खोजते थे। इस उपमहाद्वीप में ''जाति'' गत विवाह बदस्तूर जारी हैं। क्या बदला?

आजादी के बाद अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक शब्द काफी जोर-शोर से कहा जाता रहा है, क्यों धार्मिक मतावलम्बियों की संख्या के आधार पर किसी को बहुसंख्यक मानना या अल्पसंख्यक कहना कहीं राष्ट्रीय एकता को तो प्रभावित नहीं करता?

यहीं घोटाला है। गाँधीजी ने देश की सही नब्ज पकड़ी थी- अछूतोद्धार, यह एक बड़ा और कठिन काम था। उस वक्त की रूढ़िवादिता की आप कल्पना कर सकते हैं। खैर इसके साथ एक दूसरी धारा सामने आई। आगा खाँ ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व (कम्यूनल रिप्रेंजेंटशन) की माँग उठाई, इससे अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक मामला उठ खड़ा हुआ। अंग्रेज भी प्रोत्साहन दे रहे थे कि इस तरह का प्रतिनिधित्व आए। हुआ भी वही जो अंग्रेज चाहते थे। भारतीय मूर्ख बनाए गए। हिन्दुस्तान में धार्मिक विश्वास से संस्कृति नहीं बदलती - इस लिहाज से कोई अल्पसंख्यक नहीं हैं। सभी बहुसंख्यक हैं और जो समस्या है वह राजनीतिक झगड़ों की है, आर्थिक है इसका धर्म-महजब से सम्बन्ध नहीं है।

मैं ऐसा मानता हूँ कि राष्ट्र की मुख्यधारा तथा संस्कृति, भाषा, साहित्य, समाज जीवन पद्धतियों के आधार पर अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक में भेद नहीं है। क्या आप सोचते हैं कि भारत में कोई सांस्कृतिक अल्पसंख्यक हैं?

जैसा कि अभी कहा है, भारत की मुख्यधारा संतों, सूफियों, साहित्यकारों, लोक परम्पराओं ने निर्मित की है। समान जीवन पद्धति उसका प्रमाणीकरण है। मैंने कहा है कि धार्मिक विश्वास चाहे जो हो, संस्कृति नहीं बदलती, वह सभी की होती है। भारत में कोई भी सांस्कृतिक अल्पसंख्यक नहीं है।

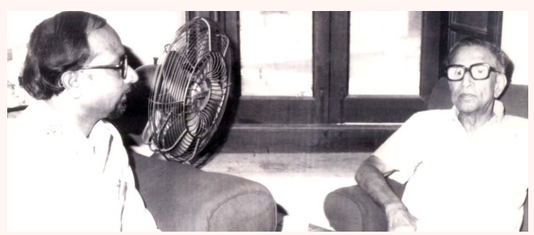

डॉ.रघुवीरसिंह से बातचीत करते हुए जीवनसिंह ठाकुर।

कई बार ये मामले उठाए गए हैं कि इतिहास का लेखन वैज्ञानिक होना चाहिए आप ही बताइये कि इसकी प्रस्तुति कैसी होनी चाहिए

देखिए इतिहास तथ्यों पर आधारित होता है। सत्ता उसे अपने तरीके से लिखवाती है, लेकिन तथ्य स्पष्ट बोलता है। सिर्फ आर्थिक आधार ही एकमात्र आधार नहीं है। हाँ, अनेक कारणों में से एक कारण हो सकता है। इतिहास लेखन में तथ्यों के साथ घटाव-बढ़ाव नहीं होना चाहिए।

क्या इतिहास में या इतिहास लेखन में जब तक यह विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती है कि विदेशी, आक्रमणकारी, लुटेरों, कत्लेआम करने वाले विध्वंसों जिनका सम्बन्ध इस्लाम से था... उन्हें तथा स्थानीय भारतीय मुसलमानों को अलग करके देखा जाये?

आक्रमणकारी लुटेरे और भारतीय मुसलमान तो साफ-साफ अलग हैं। जो आक्रमणकारी थे, वे इस्लाम के नाम पर सत्ता की लड़ाई लड़ रहे थे। उन्होंने तो इस्लामी सभ्यता को भी लूटा है। आपस में भी खूब खूनी जंग हुई है। इसलिए इतिहास में अलग से क्या कुछ लिखा जाए? यह पहले से ही सुस्पष्ट है। हाँ, इतिहास को जागरूकता से पढ़ने-समझने की जरूरत होती है।

संपूर्ण देश में समान शिक्षा नीति बने और प्रत्येक प्रदेश के बच्चों में समान राष्ट्रीय भाव पैदा हो, इसके लिए क्या किया जाना चाहिए?

मामला माध्यम पर आ जाता है। यह बात बताऊँ दक्षिण में थोड़ा हीनता बोध है तो बंगाल में उच्चता-बोध है। अब वहाँ हिन्दी का काफी प्रचलन है। मैं समझता हूँ कि दक्षिण का संस्कृत तथा संस्कृति आधार बहुत सशक्त है। एक दिन उत्तर भारत को हिन्दी वे ही सिखाएँगे।

संपूर्ण परिदृश्य पर आपको काफी कुछ कहना होगा, या आप बहुत कुछ कहना चाहते होंगे ?

हमें साम्प्रदायिक मुद्दों को दफनाना होगा। दोनों को यहीं रहना है, चाहे कितना लड़े, रहना तो साथ ही है। अब ऐसी स्थिति बनानी चाहिए कि ज्यादा से ज्यादा साथ बैठे, तमाम वर्गों, सम्प्रदायों को करीब आना चाहिए ताकि ज्यादा आपसी समझ बढ़े। मैं आशान्वित हूँ कि एक दिन दृढ़एकता स्थापित हो जाएगी। मैं सामाजिक एकता की बात कर रहा हूँ, लेकिन राष्ट्रीय एकता के प्रति अब ज्यादा जागरूकता और सक्रियता की जरूरत आ गई है।

आज के दौर पर टिप्पणी ?

अंधड़ चला है, विस्फोट होगा जब सामान्य व्यक्ति उठ खड़ा होगा तब स्थिति सुव्यस्थित हो जाएगी।

422, अल्कापुरी, देवास-455001
फोन-07272277171

जसिंता केरकेट्टा की कविताएँ

"युवा कवयित्री जसिंता केरकेट्टा की कविताओं को महज जनजातीय स्मृतियों अथवा चेतना की कविताएँ कहना व्यायसंगत न होगा। अपने पर्यावरण और जातीय स्मृतियों के साथ उनकी कविता का प्रतिरोधी स्वर सहज ही महसूसा जा सकता है। इस तरह एक ओर वे हमारी सबसे प्राचीन सभ्यता के निर्वासन, उन्हें अपने जंगलों, पहाड़ों नदियों से बेदखल कर देने के खिलाफ खड़ी हैं तो दूसरी ओर एक स्पष्ट प्रतिरोधी राजनीतिक चेतना के साथ समकालीन सत्ता से लोहा लेती हैं। 'सेना का रूख किधर है' कविता में वे उस तानाशाही के विरूद्ध अपना स्वर मुखरित करती हैं जो जनता को इस कदर निचोड़ रही है कि वे महज जिंदा रहने को ही विकास समझ लें। वे उन संगीनों से सवाल करती हैं जो सवाल करती जीभों को अपना निशाना बनाती हैं। वह दमन करने वाली सेना का रूख ही मोड़ देना चाहती हैं। 'क्यों महुए नहीं तोड़े जाते पेड़ से' एक मार्मिक कविता है जिसमें कवयित्री की जातीय स्मृतियां, सरोकार एवं संलग्नता बेहद खूबसूरती से मुखरित होती है-'पेड़ जब गुजर रहा हो/ सारी रात प्रसव पीड़ से/ बताओ, कैसे डाल हिला दें जोर से'' 'पत्थर, आम और इमली के पेड़' कविता में अपनी पहचान को बचाने का संकट है। जंगल, पहाड़ और नदी के सहारे जीवन यापन करने वाले आदिवासियों की नागरिकता का प्रमाण पत्थरों पर खुदे पुरखों के नामों और उनके द्वारा लगाए पेड़ों से अधिक क्या हो सकता है? 'जब वह प्यार करता है' सत्ता की छुपी हुई मंशा को उजागर करती कविता है सत्ता अपने एजेण्डे को लागू करने के लिए एक भाषा ईजाद करती है। कवयित्री इस भाषा और प्रचलित शब्दावली के पीछे छुपी मंशा को भेद कर सत्ता के कुटिल इरादों को बेनकाब करती है-आज वह हर उस आदमी से डरता है/ जो चिल्ला-चिल्ला कर सड़क पर कहता है/ कि वह इस देश से प्यार करता है।' 'बच्चे अपने पिता को माफ न कर सके' कविता बर्तोल्त ब्रेख्त की उन पंक्तियों के साथ खड़ी है जहाँ वे कहते हैं कि 'उस समय कवि जन चुप क्यों थे!' यह कविता प्रतिरोध की अनिवार्यता को रेखांकित करती है खासकर मध्यवर्ग को संबोधित करते हुए क्योंकि 'पिता' का मेटाफर उसी समझौता वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। कवयित्री चीन्ह रही है कि किस तरह फासीवाद बेहद चुपके से कुछ चेहरों के साथ मुल्क में अवतरित हो रहा है। 'डर जो गुलाम बनाता है' एक खूबसूरत कविता है जिसमें धर्म/ईश्वर की समाज में स्थापना के मनोवैज्ञानिक और तार्किक कारणों की पड़ताल की गई है। यह सही है कि भय और असुरक्षा ही वे रास्ते हैं जिन पर चलकर कथित भगवान या धर्म हममें बस जाता है। इस कविता की सबसे खूबसूरत युक्ति इसका क्लाइमेक्स है जब डर के खत्म हो जाने पर सारे प्रार्थना-स्थल मजदूरों के जो कि वाकई दर्शनीय हैं...असल में पूजा योग्य हैं, में तब्दील हो जाते हैं। कर्म और कर्मठता की यह काव्य स्थापना अनूठी है। 'समय की सबसे सुंदर तस्वीर' युवा कवयित्री की समसामयिक चिंताओं को समेटे है। देश के शिक्षण संस्थानों को जिस तरह नफरत और हिंसा में धकेला जा रहा है, कवयित्री इसके प्रोटेस्ट की तरह यह कविता लिखती है। यहाँ उथली नारेबाजी न होकर शिक्षा द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्वांतरण का प्रसंग अधिक है। दूसरों के हक के लिए लड़ना किसी भी शिक्षा का सुंदरतम ध्येय हो सकता है, यह कविता हमें सिखाती है-'विश्वविद्यालय से ही निकल सकती है/ इस धरती को सुंदर बनाने वाली/समय की सबसे सुंदर तस्वीर।''मनुष्यों का देवता' कविता में जसिंता कथित देवता के अस्तित्व पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाती है। अभयदान और बलिदान की बाइनरी के बीच कवयित्री प्रश्नाकुल है 'कि जो देवता मनुष्यता ही नहीं जानता/ वह मनुष्यों का देवता कैसे हो सकता है?' 'पहाड़ और पहरेदार' कविता उस हकदार की कविता है जो वाकई किसी चीज का असली हकदार होता है। जिन लोगों ने पहाड़ पर अपना समूचा जीवन बिता दिया वे सूँघकर जंगल की गंध बता देते हैं। पहाड़ों की उम्र के बारे में पूछने पर एकमात्र विधिसम्मत जवाब यही हो सकता है कि 'उनका प्यार ही पहाड़ की उम्र है।' पहाड़ पर जीवन भर विचरण करता मनुष्य पहाड़ और उसके खिलाफ की गई साजिशों से बहुत वाकिफ होता है। युवा कवयित्री पहाड़ के खिलाफ लोगों से एक लड़ाई में शमिल होती है और यह लड़ाई प्यार की लड़ाई क्योंकि 'ऐसे लोगों से पहाड़ के लोग लड़ते हैं/ सिर्फ इसलिए/ कि वे पहाड़ से प्यार करते हैं।' जसिंता ने कुछ छोटी कविताएँ भी लिखी हैं-कथित क्षणिकाओं की तर्ज पर! लेकिन अपने तापमान और प्रभाव में ये छोटी कविताएँ भावों का स्फुरण भर नहीं हैं। ये एक सुदीर्घ विचार-सरणि को जन्म देती हैं जैसे कि 'अखबार' कविता। यह छोटी कविता इस समय हमारे मीडिया पर एक बड़ी टिप्पणी है। दरअसल ऐसी छोटी कविताएँ सत्ता और मीडिया की दुरभिसंधियों को बखूबी बेनकाब कर देती हैं। जसिंता केरकेट्टा समकालीन हिन्दी कविता की वह महत्वपूर्ण युवा कवयित्री हैं जो अपनी जातीय स्मृतियों, शोषण, वंचना, व्यापार, राजनीति और अंततः छले जाने को अभिशप्त लोक के पक्ष में खड़ी कविता है। आप ध्यान दीजिएगा कि वह एक अहिंसक समाज की ऐसी प्रतिनिधि है जिसकी पीठ पर एक धनुष लटका है, वह धनुष जो जरूरत पड़ने पर हिंसा का नहीं एक कारगर प्रतिरोध का प्रतीक सिद्ध होगा।"

निरंजन श्रोत्रिय

सेना का रूख कधर है ?

युद्ध का दौर खत्म हो गया
अब सीमा की सेना का रूख उधर है
मेरा स्कूल-कॉलेज, गाँव-घर,
जंगल-पहाड़ जिधर है

कौन साध रहा है अब
चिड़ियों की आँख पर निशाना ?
इस समय खतरनाक है सवाल करना
और जो हो रहा है उस पर बुरा मान जाना
क्योंकि संगीनों का पहला काम है
सवाल करती जीभ पर निशाना लगाना

खत्म हो रही है उनकी
बातें करने और सुनने की परम्परा
अब सेना की दक्षता का मतलब है
गाँव और जंगल पर गोलियां चलाना
और सवाल पूछते विद्यार्थियों पर लाठियां बरसाना

यह दूसरे तरीके का युद्ध है जहाँ सम्भव है
गाँव में बहुतों के भूखे रह जाने का
किसानों के आत्महत्या कर लेने का
और शहर में आधे लोगों का
बहुत खाते हुए, तोंद बढ़ाते हुए
अपनी देह का भार संभालने में असमर्थ
एक दिन नीचे गिर जाने का
और अपनी ही देह तले दबकर मर जाने का

किसी युद्ध में बम के फटने से
यह शहर धुआँ-धुआँ नहीं है
यह तो विकास करते हुए
मंगल ग्रह हो जाने की कहानी है
इस विकास में न बच रहे जंगल-पहाड़
न मिल रही सांस लेने को साफ हवा
और लोग ढूँढरहे कि कहाँ साफ पानी है

कोई युद्ध न हो तब भी सेना तो रहेगी
आखिर वह क्या करेगी ?
वह कैंपों के लिए जंगल खाली कराएगी
जानवरों की सुरक्षा के लिए
गाँव को खदेड़ कर शहर ले जाएगी
और शहर में सवाल पूछते
गाँव के बच्चों पर गोली चलाएगी

आखिर क्यों सीमा की सेना का रूख उधर है
मेरा स्कूल-कॉलेज, गाँव-घर,
जंगल-पहाड़ जिधर है ?

क्यों महुए तोड़े नहीं जाते पेड़ से ?

माँ तुम सारी रात
क्यों महुए के गिरने का इंतजार करती हो ?
क्यों नहीं पेड़ से ही सारा महुआ तोड़ लेती हो ?

माँ कहती है वे रात भर गर्भ में रहते हैं
जन्म का जब हो जाता है समय पूरा
खुद ब खुद धरती पर आ गिरते हैं
भोर, ओस में जब वे भींगते हैं धरती पर
हम घर ले आते हैं उन्हें उठाकर

पेड़ जब गुजर रहा हो
सारी रात प्रसव पीड़ा से
बताओ, कैसे डाल हिला दें जोर से ?
बोलो, कैसे तोड़ लें हम
जबरन महुआ किसी पेड़ से ?

हम सिर्फ इंतजार करते हैं
इसलिए कि उनसे प्यार करते हैं।

पत्थर, आम और इमली के पेड़

अंग्रेजों ने जंगल पर जब कब्जा किया
लोगों ने उनके डर से जंगल छोड़ दिया
कई गाँव उजड़ गए, कई बिखर गए

एक दिन फिर शुरू हुई
जंगल पर अपने हक की लड़ाई
सरकार ने पूछा
जंगल में तुम्हारे पुरखों का गाँव बताओ
कोई कागज पत्र है तो दिखलाओ

लोगों ने कहा जिन पत्थरों पर पुरखों के नाम खुदे हैं
देखिए, हम अपनी पीठ पर
वो पत्थर ढोकर आए हैं
हर गाँव में पुरखों ने जो
आम और इमली के पेड़ लगाए हैं
हम वही प्रमाण अपने साथ लाए हैं

वही पत्थर, आम और इमली के पेड़
आधार बन गए
लोग जंगलों में फिर से बस गए
फिर से अपने बच्चों के लिए
आम और इमली के पेड़ लगाए
पत्थरों पर अपने नाम खुदवाए
इस डर से कि फिर कोई सरकार
कल बच्चों से मांगने लगे

उनके होने का कोई प्रमाण
जब बारिश, आँधी, तूफान में
कोई कागज नहीं बचेंगे
सबूत के तौर पर, तब भी
यही पत्थर और पेड़ खडे रहेंगे

आज फिर से सरकार मांगती है प्रमाण
और जंगल के लोग खड़े हैं
आम, इमली के पेड़ और वही पत्थर लेकर
जिस पर खुदे हैं उनके पुरखों के नाम।

जब वह प्यार करता है

एक साधारण-सा आदमी
जब किसी के प्रेम में होता है
वह उसकी हर बात से प्रेम करता है
उसके बोलने से, चुप रहने से
उसकी हँसी, उदासी, खुशी से
हर उस चीज से प्रेम करने लगता है
जिससे उसे जरा भी प्रेम हो

पर ऐसा क्या हो गया है इन दिनों
जब कोई दावा कर रहा होता है कि
वह किसी से प्यार करता है
वह आदमी इस बात से डरता है
डरता है कि जब भी कोई प्रेम का दावा करता है
कोई न कोई मारा जाता है

देखता है जिसने कहा स्त्री से प्रेम है
वह मारी गई
कहा बच्चियाँ सुरक्षित होनी चाहिए
वे तेजी से बलात्कार की शिकार हुई
कहा नदियाँ साफ होंगी वे और गंदी कर दी गई
कहा पेड़ बचाए जाएंगे
जंगल लकड़हारों को सौंप दिए गए
कहा प्रकृति से प्रेम है
वह और विकृत कर दी गई
और वह खुद क्या करता रहा
हत्यारों के साथ मिलकर हँसता रहा

अब जब कुछ लोग
चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं
कि वे इस देश से प्यार करते हैं
तब वह आदमी फिर डरता है यही सोचकर कि
इस प्रेम की आड़ में अब
वे इस देश के साथ क्या-क्या करेंगे?
किसके हाथों इसे बेच आएँगे?
किसके प्रति नफरत फैलाएँगे?
किसकी हत्या करवाएँगे?

एक साधारण-सा आदमी
किसी को जब भी चाहता है
बहुत कोशिशों के बाद भी
उसे बता नहीं पाता है कि वह उसे प्रेम करता है

आज वह हर उस आदमी से डरता है
जो चिल्ला-चिल्ला कर सड़क पर कहता है
कि वह इस देश से प्यार करता है।

बच्चे अपने पिता को माफ न कर सके

हिटलर की मौत के बाद भी लम्बे समय तक
कई घरों में छिड़ी रही एक लम्बी लड़ाई
जहाँ चुप रहने और विरोध न करने के लिए
कई बच्चे अपने पिता को माफ न कर सके
वे माफ न कर सके उन पड़ोसियों को भी
जो बंद रहे अपने घरों में चुप
दूसरों के लिए सड़कों पर निकल न सके

एक दिन युवा सड़कों पर उतरे
अपने पिता और पड़ोसियों के
चुप रहने, प्रतिरोध न कर पाने का प्रायश्चित करने
जिनके लिए उनके पिता न लड़ सके
विश्वविद्यालयों से उनके बच्चे बाहर निकले
मारे गए लोगों को उनका हक दिलाने

और फिर एक दिन
जहाँ होता था कभी हिटलर का पुराना दफ्तर
युवाओं की मांगों ने उसके दफ्तर को ढा दिया
और ठीक उसी जगह
मारे गए हर आदमी के नाम का
पत्थर की सिल्लियों वाला विशाल स्मारक बनवाया

कुछ लोगों ने मिलकर हर उस घर को ढूंढा
जहाँ मारे गए लोगों में से कभी कोई रहता था
फिर ऐसे हर घर के सामने
उनके नाम का लोहे का प्लेट लगवाया
और फिर से उनकी यादों को जिंदा करवाया

एक आदमी जिसे जर्मनी ने पहले प्यार किया
फिर उसी आदमी से नफरत भी किया
जिसने देश को पूरी तरह गर्त में पहुँचाया
आज ठीक वैसा ही एक आदमी
जगह और समय बदलकर
एक-सी घटनाओं के साथ फिर नजर आया

इससे पहले कि वह आदमी
फिर से किसी देश को गर्त में ले जाए
इससे पहले कि पीढ़ियों को सदियों तक
उसके पापों का प्रायश्चित करना पड़े
इससे पहले कि बच्चे अपने पिता
और पड़ोसियों को प्रतिरोध न करने के लिए
कभी माफ न कर सके
उस आदमी में बसे हिटलर को
पूरी ताकत के साथ
उसकी असली जगह दिखा देनी चाहिए।

डर जो गुलाम बनाता है

आखिर क्यों आदमी भगवान ढूँढने जाता है?
कौन-सा डर है जो उसे इतना डराता है?

दो जून की रोटी जुगाड़ न पाने का डर
पढ़लिख रही दुनिया में
अपने बच्चों के अनपढ़ रह जाने का डर
अंधकार में डूब रहे सूरज की तरह
जीवन में उम्मीद की
कोई किरण न दिखाई पड़ने का डर
पीछे छूट जाने का डर
सीलन भरे कमरे में बीमार पड़े
चुपचाप मर जाने का डर

इन मुसीबतों के बीच
वो चार लोग जो आस-पास रहते हैं
उनसे बिगाड़ का डर
जो बच गई थोड़ी-सी इज्जत है
उसके खो जाने का डर
जब बच्चे स्कूल जाने लगे तो
उनके सवालों का जवाब न दे पाने का डर
और सबसे बड़ा डर
अपने सवालों के लिए लड़ न पाने का डर

डरे हुए लोगों की भीड़ में
यही डर तेजी से
पहचान बनाने की भूख बढ़ाता है
और एक दिन अंधी दौड़ में भाग रहे
ऐसे लोगों को ही कोई धर्म
किसी गुम्बद के ऊपर चढ़ा देता है
फिर कोई प्रार्थना स्थल तोड़कर पहचान बनाता है
कोई मॉब लिंचिंग करता हुआ जाना जाता है
कोई ट्रोल करते हुए अपनी भूमिका निभाता है
आखिर किसी देश को कौन गुलाम बनाता है?

एक डर जो धीरे-धीरे आदमी को खाता है
वही डर उसे धर्म का गुलाम बनाता है
वही डर उसे मंदिर, मस्जिद
और गिरिजाघर की ओर ले जाता है वही डर
आदमी को आदमी से नफरत करना सिखाता है
और कितना अजीब है
इसी डर से मुक्ति के नाम पर धर्म
सदियों तक अपना अस्तित्व बचाए रखता है

देख लीजिए दुनिया में चारों ओर
जहाँ भी वह डर खत्म हो जाता है
वहाँ सारे के सारे प्रार्थना स्थल
किसी दर्शनीय स्थल में बदल जाते हैं
लोग वहाँ भगवान की पूजा करने नहीं
मजदूरों की कारीगरी, मेहनत, उनकी कल्पना
और अद्भुत भवन-निर्माण की
कला देखने आते हैं।

समय की सबसे सुंदर तस्वीर

वह समाज जहाँ
पुरूष के भीतर के स्त्रीत्व की हत्या
बचपन से ही धीरे-धीरे की जाती है
उसके भीतर की स्त्री भी एक दिन भागकर
किसी विश्वविद्यालय में ही बच पाती है

विश्वविद्यालय में ही युवा
इतिहास, भूगोल, गणित पढ़ते हुए
सीखते हैं समाज बदलना और अपने ही नहीं
दूसरों के हक के लिए भी घर से निकलना
वे धीरे-धीरे पुरूष से मनुष्य होना सीखते हैं
और साथ संघर्ष करती स्त्रियों को भी
देह से ज्यादा जानने, समझने लगते हैं

विश्वविद्यालय के युवा
आदमी के हक की आवाज उठाते हैं
व्यवस्था के लिए किसी आदमी को
मशीन भर हो जाने से बचाते हैं
लाश बनकर घर से दफ्तर
और दफ्तर से घर लौटते आदमी को
जिंदा होने की वजह बताते हैं

एक आत्माविहीन समाज
जो पुरूषों को स्त्रियों से
सामूहिक दुष्कर्म करना सिखाता है
और उसकी हर हत्या पर
चुप्पी साधे रहता है
जहाँ सदियों से यही रीति चलती है
उसी समाज के किसी विश्वविद्यालय में

साथ पढ़ती, लड़ती स्त्रियाँ
घेरकर एक पुरूष को
पुलिस के निर्मम डंडों से बचाती हैं

विश्वविद्यालय ही पेश कर सकता है
किसी समाज को बेहतर बनाने की नजीर
विश्वविद्यालय से ही निकल सकती हैं
इस धरती को सुंदर बनाने वाली
समय की सबसे सुंदर तस्वीर।

मनुष्यों का देवता

वह जो देवता होना चाहता था
लोगों ने अपनी मुक्ति के लिए
एक दिन सचमुच उसे
अपना देवता बना लिया

पर देवताओं ने कब सबकी मुक्ति चाही है?
वे पूरे इतिहास में कुछ लोगों के साथ
बाकियों के खिलाफ
लड़ते रहें हैं एक ही तरह का युद्ध
और हर बार लोग चढ़ाते रहे हैं
युद्ध में उनकी जीत के लिए
किसी न किसी आदमी की बलि

अब देवता युद्धभूमि से उठकर
राजनीति में आ गया है
पर बदले समय में भी बदला नहीं है
बड़ा तो हुआ पर व्यापक न हो सका है
अब भी वह राजनीति में कुछ लोगों के साथ
और बाकियों के खिलाफ है

देवता भला
क्यों सबका भला नहीं चाह पाता!
क्यों कुछ के लिए चाहता है अभयदान
और बाकियों से मांगता है बलिदान?

वह आखिर किसका देवता है?
जो मनुष्यता ही नहीं जानता
वह मनुष्यों का देवता
कैसे हो सकता है?

पहाड़ और पहरेदार

पहाड़ के पहरेदार
जन्म से पहाड़ को जानते हैं
सूँघ कर जंगल की गंध बताते हैं
नाड़ी छूकर उसकी देह का ताप
और उसके चेहरे के बदलते रंग बताते हैं
पहाड़ों, पेड़ों, झरनों यहाँ तक कि
मिट्टी के नीचे दबे कंद मूल के नाम जानते हैं
वे पहाड़ के सीने में दिल की तरह बसते हैं
जिनके धड़कने से पहाड़ बचे रहते हैं

पहाड़ों की उम्र क्या है
पूछने पर वे क्या कहते हैं?
उनका प्यार उनके पुरखों के पुरखों के पुरखों से
शुरू होता है
पहाड़ की नसों में पीढ़ी दर पीढ़ी
उनका ही प्यार खून की तरह बहता है
इसलिए पहाड़ सदियों तक जिंदा रहता है

पर एक दिन शहर के चौकीदार
अपने मालिक का इशारा पाकर
पहाड़ पर आते हैं
और कई दिनों से भूखे खोजी कुत्ते की तरह
पहाड़ पर अकेली घूमती स्त्री को
देख लार टपकाते हैं
स्त्रियों को मांस का लोंधा समझने को अभिशप्त
ये जंगल की स्त्रियों के मांस पर टूट पड़ते हैं
और भोर उठकर पेड़ से शलप उतारने जा रहे
उनके प्रेमियों को गोली मार देते हैं
ये शहर लौटकर गर्व से चिल्लाते हैं
देखो, जंगल से हम माओवादी मारकर आते हैं

ये पहाड़ पर अपने तमगे की तलाश में भटकते हैं
और आदमियों का शिकार कर लौटने के बाद
उनकी लाश बिछाकर, शहर से सम्मान लेते हैं
ये कौन हैं?
ये उस जमात के लोग हैं
जो जानवरों का नाम लेकर सदियों से
आदमियों को मारने के अभ्यस्त हैं
कागज के टुकड़ों के आगे जो
मालिकों के इशारे पर जीवन भर नाचते हैं
और देह के भीतर अपनी ही आत्मा का मुँह
कस कर पट्टियों से बांधते हैं

पहाड़ जानते हैं
जीवित आत्माओं का संघर्ष
आत्माविहीन ऐसी लाशों से है
जिन्होंने खुद को अनवरत बेचा है
जीवन को जुगाड़ ही देखा है
नौकरी करते हुए गुलामी कमाई है
और ऊपर से आदेश आते ही हमेशा
पहाड़ की समृद्ध संस्कृति पर गोली चलाई है
ये पहाड़ के कभी नहीं थे न कभी हो सकेंगे
ऐसे लोगों से पहाड़ के लोग लड़ते हैं
सिर्फ इसलिए कि वे पहाड़ से प्यार करते हैं।

अखबार

समाज का आईना अखबार
कहते थे जिसे, अब वह नहीं रहा
किसी खोजी कुत्ते में तब्दील वह
अब सिर्फ उस आदमी की गंध पहचानता है
जिसकी गंध, भात में सानकर खिलाई गई है उसे।

पालतू कुत्ते

आवारा कुत्तों के बनिस्बत पालतू कुत्तों के
मारे जाने की संभावनाएँ कम हैं
क्योंकि वे पूरी ताकत के साथ
अपनी दुम हिलाते हैं।

हथियार

वे हथियार उठाये आते हैं
और जंगल के आदमी से कहते हैं
'अपने हथियार डाल दो'
कहता है जंगल का आदमी
हाथ में हथियार लेकर
निहत्थों से डरे हुए लोग
तुम्हारे हाथ में जब
तक हथियार हे
मेरी पीठ पर लटका मेरा धनुष
मुझसे अलग नहीं हो सकता।

जसिंता केरकेट्टा
जन्म : 3 अगस्त 1983, खुदपोस गाँव, पश्चिमी सिंहभूम, झारखण्ड
शिक्षा : संत जेवियर्स कॉलेज से मास कम्युनिकेशन में स्नातक, राँची विश्वविद्यालय से मास कम्युनिकेशन में एम.ए.
सृजन : दो कविता संग्रह 'अंगोर' एवं 'जड़ों की जमीन' प्रकाशित। कई विदेशी भाषाओं में कविताएँ अनूदित।
सम्मान : इंडिजिनस वॉइस ऑफ एशिया, रविशंकर उपाध्याय स्मृति कविता पुरस्कार, अपराजिता अवार्ड, वेणु गोपाल स्मृति सम्मान।
सम्प्रति : स्वतंत्र पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता
सम्पर्क : द्वारा मनोज प्रवीण लकड़ा, सरकारी स्कूल के पास, खोरहाटोली, ओल्ड एच.बी. रोड, कोकर, राँची (झारखण्ड) 834001
मोबाइल : 72509 60618
ई-मेल : jcntkerketta7@gmail.com

ऐसी अकथ कहानी जिसे बार-बार कहना और सुनना जरूरी हो रहा है

इस बार हम एक अलहदा किस्म की अनोखी सी कहानी पढ़ेंगे जो हम सब की सुपरिचित लेखिका सुश्री कविता वर्मा की है। कविता जी अधिक नहीं फिर भी, बहुत वर्षो से लिख रही हैं और कथा-जगत में उन्होंने अपना एक खास मुकाम भी तय कर लिया है। आजकल जिस कदर और जिस तरह 'ठस्स' कहानियों का एकतरफा रैला आया है, उनसे अलग हटकर एक नए भाव, अभिनव रंग और भरी-पूरी ताजगी के साथ, उनकी यह कहानी कछु अकथ कहानी ढेर सारे ऐसे आयाम खोलती है जो दिमाग को धीरे धीरे लेकिन गहराई से प्रभावित करने में समर्थ होते हैं।

एक जो खास बात मुझे लगी कि आज तेजी से वैश्विक होती जा रही हमारी दुनिया में जहाँ सामान्यतः कथ्यानुकूल विषयों की कोई कमी नहीं रह गई है, अब भी बहुल जनसंख्या वाले विविध इलाकों की अपेक्षा शहराती मध्यवर्गीय या निम्नवर्गीय जीवन की कथाएँ बहुतायत में लिखी जा रही हैं। हो सकता है कि यह उन लेखकों की मजबूरी हो क्योंकि अधिकतर से अधिक लेखक शहरी/अर्धशहरी/नवधनाढ्य कस्बों से आते हैं और उनके अनुभवों का संसार विस्तृत तथा व्यापक नहीं हो पाया हो अथवा यह भी कि इस खांचे की दुनिया की परिधि में ही वे अपनी अनुभूतियों को परवान आसानी से चढ़ा पाते हैं और अब तक स्थायी जड़ जमा चुके संस्कारों के वटवृक्ष की छाया में चिरपोषित भावनाओं को उजागर होने का लेखकीय स्वर्णिम अवसर उन्हें इसी भूमि में अनायास मिल पाता हो। जो कुछ भी हो, लेकिन इन हालात के दुष्परिणामों की भूरी छायाएँ कथा-साहित्य के पठित और पल्लवित होने की संभावनाओं पर विपरीत प्रभाव डालती हैं जिनकी ओर कथा-प्रेमी और रसिक जन उत्साह और उछाह से अब तक टकटकी लगाए देख रहे हैं। इस पर्यावरण में एक जुदा अन्दाज की दिलचस्प कहानी पढ़ना वाकई गहरी राहत देता है। यह इस कहानी की केन्द्रीय शक्ति है।

हालांकि भारतीय समाज में अलग-थलग पड़े, अनबूझे और लगभग अछूत जैसे आदिवासी समाज पर अब कई कहानियाँ देखने को मिल भी रही हैं लेकिन लगभग सबका 'टोन' एक जैसा है जो एकरसता पैदा करता है। उनमें आदिवासी समाज और उनके परिवेश, उनके सामाजिक-आर्थिक जीवन की दुश्वारियों, कठनाईयों, विवशताओं के देखे-सुने वर्णन और विवरण निस्संदेह मिलते हैं लेकिन उनको शाब्दिक विस्तार देती भाषा और अभिव्यक्ति में एक कृत्रिमता का बरबस अभास होता है क्योंकि उस जीवन को उन्होंने दूर से देखा-सुना है, इसलिए लिजलिजी भावुकता में लतपथ भाषा, भावनाओं में सतही उद्वेग तथा अतिनाटकीयता के प्रदर्शन मे एक अच्छी रचना की सोहबत के असर से पाठक वंचित रह जाता है। ऐसा लगता है कि किसी दूर मकान की मचान पर खड़े होकर किसी निचले नगर के बाढ़ग्रस्त होने की घटना को सुनाया जा रहा है जिसमें दया की महक तो बहुत आ रही है लेकिन करूणा की एक बूंद भर नहीं। जानना चाहिए कि कथा और रिपोर्ताज में बुनियादी फर्क होता है और सुरूचिपूर्ण परिष्कृत शब्दों की भीड़ इस अंतर को पाट नहीं सकती।

दूसरी महत्वपूर्ण बात जो इस वर्ग की पढ़ी-सुनी कहानियों के बारे में कह देना चाहिए कि आदिवासियों के जीवन के जो इकतरफा ब्यौरे इनमें दिए जाने का जो चलन रहा है, इस प्रवृत्ति के कारण हम उनके समग्र जीवन के विविध रंगों, उनकी संस्कृति, पारिवारिकता, सामुदायिक विशेषताओं से बेहतर तरीके से परिचित और साझेदार नहीं हो पाते। यह दुर्भाग्य है कि वृहत् समाज की अंतहीन उपेक्षा और अलगाव के चलते, अपने संघर्षरत और क्षत-विक्षत जीवन को, जहाँ कहीं और जैसे भी संभव हो, रस और मधुरता से भरने के सीमाबद्ध प्रयास जो वे करते हैं, उन तक हमारी लेखकीय निगाह पहुँच ही नहीं पाती। यह सच है कि उनके जीवन में क्रूर प्रशासन का अमानवीय बर्ताव, अपमानजनक और यंत्रणापूर्ण स्थितियों की अधिकता है। वैसे तो, यही हाल कमोबेश शहराती जीवन का भी है लेकिन आदिवासियों की तुलना में शहरी लोगों के पास विरोध, असंतोष और प्रतिकार की शक्ति तथा अवसर बहुत ज्यादा हैं, फिर भी वे अपने और अपनों में सिमटकर एक संतुष्ट और शांत जिन्दगी की तलाश कर लेते हैं। यह उनकी एक बड़ी ताकत है। इसके स्त्रोतों का शोध और अनुसंधान करना चाहिए, तभी हमें इस वर्ग की उन चारित्रिक ऊँचाईयों के बारे में पता चल सकेगा जिन्हें हम अपनी सभ्यता में भूलते जा रहे हैं। पाप-पुण्य, ईमान-अपराध के बारे में जो बुनियादी समझ अभी भी आदिवासी समाज में जागृत है, इस कहानी में बहुत इत्मीनान और सच्चाई से बयान कर दिया गया है।

इसके अलावा, वर्ग-विभाजन में गहरी आस्था और रूचि रखने के आदी हम लोंगो का एक विचित्र 'माइंड सेट' बन गया है जिसमें हर शहरी, खास तौर पर प्रशासन का आदमी निर्मम, कठोर और शोषक दर्शाया जाता है जबकि बिलकुल ऐसा ही नहीं है। इन क्षेत्रों में ऐसे भी प्रशासकीय लोग मिल जाते हैं जो अपनी संवेदनशीलता और मानवीय मूल्यों के समादर का परिचय भी देते हैं। हालांकि ऐसे उदाहरण अपवादस्वरूप गिने जा सकते हैं लेकिन एक जिम्मेदार लेखक की आँख से ओझल नहीं होते क्योंकि यह तो वे पात्र हैं जिन्हें ढूंढकर और सहेजकर रखा जाना और दृश्य में उपस्थित करना लेखक का स्वधर्म है और यही उसका सामाजिक दायित्व भी जिससे मुँह मोड़कर ना लिखा जा सकता है और ना ही जिया जा सकता है। लेखक को किसी पूर्वाग्रह के अधीन होकर नहीं लिखना चाहिए वरना कथा एक खास चश्मे से देखा हुआ आख्यान बन कर रह जायेगी और जिन्दगी को करीब से छूने में हम चूक जायेंगे। यह कहानी अपने सत्य को कहती है और कहानीकार मात्र साक्षी की भूमिका में है, इसीलिए कथ्य एक ताजे हवा के झोंके की तरह आता है और वातावरण को सुरभित कर देता है। कथा-नायक का ईमान और खुद्दारी हमें उन पुरानी कहानियों की खुशबू की बरबस याद दिला देता है जिन्हें हम भुला बैठे हैं, जबकि अवमूल्यन के इस दौर में उन्हें सायास याद रखा जाना चाहिए।

मैं उम्मीद करता हूँ कि शाम की भूली-भटकी बयार के अहसास सी यह कहानी आपको पसंद आयेंगी, एक दोस्त की तरह बहुत सारी खोई बातों के बारे में बतायेगी और आप अपने पुराने मन में एक नयापन महसूस कर सकेंगे।

आदरणीया कविता जी को बहुत बहुत मुबारकबाद और उनके यशस्वी लेखकीय जीवन की शुभकामनाएँ भी।

- मुकेश वर्मा

94250-14166

कछु अकथ कहानी

कविता वर्मा

चौड़ी चिकनी सड़क पर बस पूरी ताकत लगा कर जितनी गति पकड़ सकती थी उस गति से दौड़ी चली जा रही थी। बस के काँच यात्रा के धक्के खाकर पकड़ ढीली कर चुके थे उनके खड़खड़ाने का शोर बस के अंदर भरा हुआ था। काँच अंदर से यात्रियों के सिर के थपेड़े खाकर और बाहर से बारिश पानी धूल मिट्टी खाकर दोनों ओर से अपारदर्शी हो चले थे। खिड़की के मटमैले काँच को भेद कर सूरज की किरणें झेमरिया की आँखों पर पड़ीं उसने अचकचा कर आँखें खोल दीं। आँखें मिचमिचा कर उसने अपने आसपास की स्थिति का जायजा लेकर खुद कहाँ है यह जाँचा। अपने कंधे पर टिके बगल वाले आदमी का सिर धका कर सीधा करते अनायास उसका हाथ अपनी कमर पर बँधी गाँठ पर चला गया। उसने घबरा कर बुशर्ट का किनारा उठाकर धोती की गाँठ में बँधे पैसे और फिर पेट पर हाथ से टटोल कर बंडी में रखे पैसों की थाह लेते लंबी साँस ली। अब उसने थोड़ा आगे झुक कर पैरों के पास रखी अपनी पोटली टटोली जो बस के धक्के से सीट के नीचे थोड़े पीछे चली गई थी। झेमरिया ने उसे खींच कर आगे अपने पैरों के पास रखा और नींद में पैर से उतर गई चप्पलों को टटोल कर पैरों के सामने रखा।

सब सामान ठीक ठाक होने की तसल्ली के बाद अब झेमरिया ने धुंधले काँच से बाहर देखकर पता लगाने की कोशिश की कि बस कहाँ पहुँची ? अब तक बस जाग चुकी थी। खड़खड़ाते काँचों की आवाज लोगों की आवाजों से सहम कर मानों चुप सी हो गई थीं। झेमरिया ने बस के अंदर देखने की कोशिश भी नहीं की कि उसमें जान पहचान का कौन है ? वह तो धुँधले काँच से आँखें चिपकाये बस के बाहर के खेत खलिहान पेड़ झोपड़े देखते जानने की कोशिश कर रहा था कि और कितनी देर लगेगी गाँव पहुँचने में। सभी खेत और पेड़ एक से दिख रहे थे। दूर दूर बनी झोपड़ी भी अपनी कोई अलग पहचान धारण नहीं किये थीं। झेमरिया को बैचेनी सी होने लगी। उसने बस के अंदर नजरें घुमाते दूसरी तरफ के काँच से बाहर कोई बस्ती या मकान देखने की कोशिश में गर्दन को उचकाया लेकिन असफल रहा। कुछ काँच के धुँधलेपन की वजह से तो कुछ किसी भी प्रकार की विशिष्ट पहचान के ना होने से।

उकता कर झेमरिया बस के अंदर बैठे लोगों को देखने लगा। मटमैले सफेद से बुशर्ट या कुरता पहने मजदूर जिन्होंने कमर में धोती के नाम पर एक दुशाला सा लपेट रखा था जो प्रायः मैरून या हरा था जिनकी कोई अलग पहचान नहीं थी। वे सब मजदूर थे जो बड़ौदा से खेतों में मजदूरी कर फसल कटने के बाद अपने अपने गाँवों को लौट रहे थे। ये सभी मजदूर बारिश के पहले अपने खेतों के पट्टे ढोर डंगर ठीक करके अपने बूढ़े माता पिता या पत्नी को सौंप कर बड़ौदा के बड़े जमींदारों के यहाँ उनके खेतों में मजदूरी करने या बँटाई पर लेने चले जाते हैं। क्वाँर के पहले फसल काट कर अपने घर वापस आ जाते हैं।

इस समय वे अपने छोटे बड़े पट्टे से हुई फसल काट बेच कर नदी कुँए तालाब में पानी की उपलब्धता देखकर आगे की योजना बनाते हैं।

झेमरिया भी बड़ौदा में एक जमींदार के तीस एकड़ खेत को अपने काका उनके लड़के और अपने बेटे के साथ बटाई पर लेता है। जितने लोग उतने हिस्सेदार। अब तो उसका बेटा भी जवान हो गया है और इस साल तो वह भी एक हिस्सेदार बन गया है। सभी हिस्सेदार मजदूर भी हैं मालिक भी और हिसाब जमींदार करता है सबका बराबरी से। अपने हिस्से की फसल बेच कर ये लोग बारी बारी से घर आते हैं। झेमरिया के पास गाँव में छोटे से पट्टे पर एक झोपड़ी है उसी में एक छोटी आटा चक्की डाल रखी है एक गाय और दो तीन बकरे, बकरी, मुर्गी जिनकी संख्या घटती बढ़ती रहती है। अभी वह अपने हिस्से की फसल बेचकर घर जा रहा है उसका विचार लड़के की शादी तय करने का भी है उसकी शादी कर देगा तो बड़ौदा में रोटी थापने से निरात मिलेगी। अभी तो गाँव से खबर आई है उसके नाम कोरट का कागज आया है इसलिए वह भागते हुए घर जा रहा है।

झेमरिया ने बैचेनी से फिर बाहर झाँका। दूर तक फैली नर्मदा की घाटी दिखाई देने लगी। उसने देखा नर्मदा अपने भरपूर दिनों में है बाँध में पानी भरने के कारण बहाव थम सा गया है मटमैला पानी साफ काँच नीर हो गया है। दूर तक फैली घाटी में मिटटी के ऊँचे नीचे कटाव वाले टीले थे जिनके बीच तक पानी भरा था। मिटटी के इन टीलों पर जंगली बबूल उगे थे तो कहीं कहीं जहाँ पानी उतर चुका था भैसों की आवाजाही से दलदल सा बन गया था। उसने दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगाये और काँच की फ्रेम में ऊँगलियाँ फँसा कर खिड़की खोलने की कोशिश की पर असफल रहा। वह काँच में आँखें लगाकर नर्मदा को देखता रहा। इस साल बारिश अच्छी हुई इसकी खबर तो उसे आने जाने वालों से मिलती रही थी। बस पुल से गुजर रही थी एक दो खिड़कियाँ जो खुली थीं उनसे एकाध सिक्का फेंका गया जो रेलिंग से टकरा कर गिरा पुल पर या नदी में वह यह ना जान सका।तभी काँच के सामने से धूल सी उड़ती दिखी शायद आगे की किसी खुली खिड़की से मछलियों के लिए लाइ परमल फेंकें गए थे। पम्पिंग स्टेशन के सामने से गुजरते झेमरिया ने उसके अंदर रखी बड़ी-बड़ी मोटरों को देखने की कोशिश की बस एक झलक ही देख पाया। नर्मदा को घरों घर पहुँचाने के लिए कितने जतन किये हैं सरकार ने लेकिन कमाने खाने के जतन घर में कर देती तो ऐसे परिवार छोड़ परदेश नहीं जाना पड़ता। झेमरिया ने गहरी साँस ली और सिर को दाएँ बाएँ घुमाकर मन में आई उदासी को झटका , थोड़ी देर में वह पहुँच तो रहा है परिवार के पास।

दूसरी तरफ की खिड़की से साँवरियाँ सेठ के मंदिर का कलश दिखा उसने पैरों में चप्पल पहन कर पोटली उठाकर गोद में रख ली। बस एक दो ब्रेकर पर उचकती धीमी हुई और रूक गई। सभी को उतरने की जल्दी थी यहाँ से दूसरी बस पकड़ कर गाँव पहुँचने में अभी एक घंटा और लगेगा। सूरज चढ़रहा था बारिश से धुले पुँछे आसमान में सूरज की किरणे अपनी पूरी प्रखरता के साथ फैली थीं। बस से उतरते ही झेमरिया की आँखें चौंधिया गईं। सामने ही पाटी जाने वाली जीप खड़ी थी झेमरिया जल्दी से गाड़ी में चढ़गया।

हवा के झोंकों के साथ झेमरिया के विचार भी गति पकड़ने लगे। इस बार इतवारी हाट में माई बापू के लिए कपडे लेगा घरवाली को भी इस बार लुगड़ा दिलवाएगा और उसको खर्ची के लिए पैसे भी दे आएगा। पिछली

दफा उसने मांगे थे लेकिन उसके पास किराये पूर्ति पैसे ही बचे थे इसलिए नहीं दे पाया। इस बार फसल अच्छी हुई है उसके पास पैसे भी हैं लेकिन कोरट का कागज भी तो आया है , उसकी याद आते ही झेमरिया चिंता में पड़ गया। पंद्रह दिन पहले उसके बापू ने काका के हाथ खबर भिजवाई थी कि कोरट का कागज आया है पैसा की व्यवस्था करके आ जाओ। झेमरिया तो तुरंत आना चाहता था लेकिन फसल कटने में छह आठ दिन की देरी थी। काका बाबा के लड़कों के पास भी पैसे नहीं थे इसलिए उसने खबर भिजवा दी थी कि सरकारी बाबू से कैसे भी करके मोहलत माँग ले। पता नहीं उसमे कितना खर्चा होगा उसके बाद पैसे बचेंगे या नहीं सोच कर झेमरिया उदास हो गया। उसने जैसे थाह सी पाने के लिए जीप के पीछे खड़े लोगों के बीच से मुँह बाहर निकाल लम्बी साँस ली और इस लम्बी गहरी साँस के साथ उसने अपनी विवशता को भी पी लिया। जीप रूक गई झेमरिया को अपने फलिया तक पहुँचने के लिए अभी आधे कोस पैदल चलना था। उसने जीप की तरफ पीठ कर सावधानी से बुशर्ट की जेब से खुल्ले पैसे निकाले जो उसने चलते समय ही खुल्ले करवा लिए थे। वह बड़े नोट नहीं तुड़वाना चाहता था पता नहीं कैसी जरूरत हो पैसे बचाकर रखना ही ठीक है। फलिये की ओर बढ़ते उसने देखा झोपड़ी से धुँआ उठ रहा है बाहर खाट पर उसके बापू बैठे हैं पास ही दो बकरियाँ और तीन मेमने चर रहे थे और आठ दस मुर्गी दाना चुग रही थीं। बोकड़ी और मोरगी बढ़ी गई। उसने खुशी से खुद से कहा और तेजी से झोपड़ी की तरफ बढ़ने लगा।

उसके बापू थावरिया ने किसी को झोपड़ी की ओर आते देखा तो आँखों को चुँधियाने से बचाने के लिए एक हाथ माथे पर रख दूसरे हाथ से कमर को सहारा दे खड़ा हो कर देखने लगा और उसे पहचान कर खुशी से चिल्लाया झेमरू हो। जवाब में उसने भी हाथ उठाकर जोर से कहा हो।

चाय पीकर झेमरिया खाट पर बैठा बापू के साथ बातें कर रहा था माई पास ही जमीन पर बैठी थी वातावरण में मक्की की रोटी की खुशबू फैल रही थी जो उसकी घरवाली मकुन चूल्हे पर बना रही थी।झोपड़ी के आसपास से उदासी उड़ गई थी। बापू ने बिजली के बिल के साथ कोरट का कागज दिखाया जिस पर लिखे अक्षर काले धब्बों से उसकी आँखों के सामने नाचने लगे। उसने सिर उठाकर देखा सूरज चढ़आया था। अचानक उसे तेज गर्मी लगने लगी वह कागज हाथ में लिए खड़ा हो गया और गमछे से पसीना पोंछने लगा।

क्वाँर की धूप कड़ी हुई गी हे कहते हुए थावरिया ने खटिया उठा कर

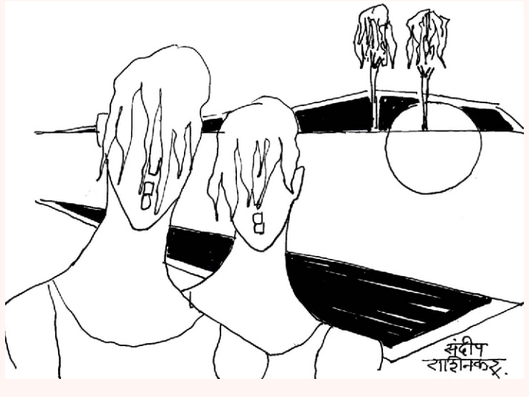

छप्पर के नीचे डाल दी। झेमरिया ने एक लोटा पानी पिया फिर कागज लेकर खटिया पर बैठ गया।

''केतरा क बिल है बताया नहीं लेन मेन ने ?'' झेमरिया ने पूछा हालाँकि उत्तर सुनने के इंतजार में उसका दिल डूबा जा रहा था।

''बतायो तो कई नी योज कियो के बिल जादा हे नी भरयो तो जेल हुई जावेगी। झेमरिया के केजो के जल्दी करे।'' बापू ने चिंतित स्वर में कहा।

''लेन मेन अई गयो होवेगो हूँ जई ने पता करूँ।'' कहते हुए वह उठ कर खड़ा हो गया।

''रोटड़ा खई जाता ,'' माई ने कहा तो वह सौंधी महक फिर उसके नथुनों में घुसी लेकिन कागज की चिंता ने उसे बाहर निकाल फेंका।

''बाद मे वह झोपड़ी के अंदर घुसा उसकी नजर आटा चक्की पर पड़ी जाने क्यों उसके मुँह का स्वाद कसैला हो गया। उसने अंदर कोने में रखी लोहे की पेटी की तरफ देखा उसमें ताला लगा था। वह चाबी के लिए आवाज लगाने की सोच ही रहा था तब तक मकुन अंदर आ गई। उसने गले में पड़े लाल धागे को निकाला जिसमे चाबी बंधी थी और पेटी का ताला खोल दिया। झेमरिया ने बुशर्ट की जेब से रूपये का बण्डल निकाल कर मकुन को थमा दिया।

''केतरा हे ?''

''पता लगेगो जरूरत पूरती है के नी।'' उसने अनमने से जवाब दिया और वहीँ बैठ गया। मकुन ने धीरे से उसकी जाँघ पर हाथ रखा ''हो जायसी , म्हारी राखड़ी रख कर पिसा उठा लेसी तम होसला रखो।''

राखड़ी रख देईस तो छुड़ाई कसे ? झेमरिया ने मन में सोचा पर बोला कुछ नहीं दोनों कुछ देर खामोश बैठे रहे फिर झेमरिया बाहर निकल गया।

बापू ने कहा ''तेरसिंग को साथ लई जा '' सुनकर वह ठिठका अकेले जाने में वह डर ही रहा था सरकारी कागज का डर बिल की रकम का डर और सरकारी दफ्तर का डर। झेमरिया ने बगल की टेकरी पर बनी झोपड़ी की तरफ देख कर आवाज लगाई ''हो भाया'' झोपड़ी से उसके काका का लड़का तेरसिंग बाहर निकला और आवाज की दिशा में देखने लगा।

''लेन मेन से मिलने जाना है तू साथ चल।'' बिना कुछ बोले तेरसिंग साथ चल पड़ा।

''तू वापस कब जायेगा ?'' झेमरिया ने पूछा।

''आज रात की बस से।''

मुख्य सड़क पर आकर दोनों रूक गए अब किस दिशा में जाएँ दोनों को ही समझ ना आया। तीन टपरों के फलिया में कोई बिजली ऑफिस तो था नहीं। दोनों सड़क किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ गए

और विचार करने लगे। सूरज सिर पर चढ़गया था पेड़ की छाँव देखते तेरसिंग ने कहा ''दस बजी गया होगा लेन मेन एतरा टेम ही जाये हे। थोड़ी देर देखी लां।'' दोनों सड़क के मोड़ तक टकटकी लगाए बैठे रहे। बीच बीच में झेमरिया पेड़ की छाँव पर भी नजर डाल लेता।

''केतराक बिल आया है?''

'' बापू कह रहा था बहुत ज्यादा है , इसलिए सरकारी कागज आया है।''

''नहीं भर पाया तो ?''

झेमरिया खाली खाली नजरों से सूनी सड़क पर देखने लगा। ''कई जाने काय होगा ? पोलिस रपट तो नी होगी ना ?'' उसने लाचारी से तेरसिंग से पूछा।

''लेन मेन अच्छा आदमी है उससे पता चलेगा। धीर रख सब ठीक होगा।''

''दो साल पहले भी बिल भरने बिजली आफिस गया था वहाँ का साब और बाबू भोत खोटा बोला था।''

''बिल कब से नहीं भरा ?''

''बरसात के पहले भरा था फिर मैं गुजरात चले गया।''

''थोड़ा थोड़ा करके भरते रहना चाहिए '' तेरसिंग ने धीरे से कहा।

लगभग आधे घंटे के इंतजार के बाद एक मोटर सायकिल की आवाज सुनाई दी। तेरसिंग उठ कर देखने लगा, उसने हाथ देकर गाड़ी को रोका। इलाके का लेन मेन था तेरसिंग थोड़ी देर उससे बात करते रहा फिर उसने झेमरिया को बुलाया। लाइन मेन ने बिल और नोटिस देखा और कहा कल तक बिल भर दो।

''केतराक बिल है ?'' झेमरिया ने डरते हुए पूछा। इस प्रश्न के जवाब पर उसकी मकुन और माँ बापू की ढेर सारी उम्मीदें टिकी थीं। उसका दिल जोरों से धड़क रहा था कान मानों सुन्न हो रहे थे। लाइनमेन ने एक नजर बिल पर डाली फिर झेमरिया को ऊपर से नीचे तक देखा। चेहरे पर डर और चिंता की लकीरें खिचड़ी बाल गले में पड़ा मैला गमछा धुल धुल कर छिरछिरि हो गई मटमैले सफेद रंग की बुशर्ट कमर में लिपटा हरे रंग का शाल और पैरों में प्लास्टिक के जूते जो अपने जीवन की दुश्वारियाँ खुद बयान कर रहे थे। झेमरिया की यह हालत देख कर लाइनमेन को भी बिल की राशि बताने में संकोच हो आया। वह बीस साल से इस इलाके में था और सभी की आर्थिक स्थिति जानता था। झेमरिया और तेरसिंग बिना पलकें झपकाये मुँह खोले लाइनमेन को ताक रहे थे।

लाइनमेन ने धीरे से कहा ''आठ हजार दो सौ रूपये '' जवाब के इंतजार में खुले मुँह अब सदमे और आश्चर्य में बदल गए।

''तुम कल बड़वानी ऑफिस चले जाना साहब से मिल लेना जो भी कम हो सकता है वह कर देंगें।'' लाइनमेन ने सान्तवना भरे शब्दों में कहा।

''केतराक काम हो जायेगा ?'' डूबती आवाज में उसने पूछा।

''यो तो नहीं बताई सकूँ पन साब भला आदमी हैं जो भी करि सकाँगा करि देगा। तम घबराओ मति कल जरूर चला जाजो।''

लाइनमेन के जाने के बाद भी दोनों देर तक सड़क किनारे बैठे रहे। इस साल पानी अच्छा बरसा बीज खाद सभी अच्छे पड़े तो फसल भी खूब हुई। बेटा भी एक बँटाईदार हो गया। तेरसिंग के बाप की तबियत अब ठीक नहीं रहती वह हट गया छोटे काका उसका बेटा और तेरसिंग सहित कुल पाँच बँटाईदार हैं और जमींदार तो है ही। इस साल झेमरिया की कमाई दुगुनी हुई है लेकिन इस साल उसे बेटे की शादी करना है झोपड़ी बनवाना है गाँव में थोड़ी सी जमीन खरीदना है।कितनी बड़ी बड़ी बातें सोच रखी थीं उसने लेकिन यह बिजली का बिल सब खत्म कर देगा। क्या करे चक्की बंद कर दे क्या ? फिर तो बस गुलुप जलेगा इतना बिल नहीं आएगा लेकिन फिर ऊपरी खर्च कैसे चलेगा ? आसपास के दस बारह फलिये में उसके यहाँ चक्की है अच्छा पिसान आता है ऊपरी खर्च निकल आते हैं। नहीं नहीं चक्की बंद नहीं करूँगा अब से हर महीने बिल भरूँगा उसने सोचा। लेकिन कल तो आठ हजार दो सौ रूपये निकल जायेंगे सोच कर ही उसका मन बैठ गया।

अगले दिन सुबह तक झेमरिया घर के खर्च और पैसों का तारतम्य बैठाता रहा कभी आठ हजार रूपये के साथ कभी उसके बिना।

''साब '' कमरे में झाँकते उसने धीरे से कहा।

''हाँ अंदर आ जाओ '' बड़ी सी टेबल के पीछे मध्यम कद मंझोले शरीर का एक व्यक्ति सामने फैली फाइलों में नजर गड़ाये बैठा था। उसके सामने ना देखने के कारण झेमरिया ने हिम्मत करके उनके चेहरे पर एक भरपूर दृष्टी डाली और तुरंत नजरें हटा लीं। एतना बड़ा साहब के ऐसो घूरनों काई अच्छो लगे उसने मन में सोचा।

''बैठो '' बिना उसकी तरफ देखे साहब ने कहा तो वह असमंजस में पड़ गया ''कूण जाने साब ने देख्यो नहीं महारा जैसा आदमी के कुर्सी पर बैठालेगा कई ?

कोई आहट ना पाकर साहब ने ऊपर देखा और कुर्सी की तरफ इशारा करके बोले ''बैठो बस दो मिनिट।''

हतप्रभ से झेमरिया ने इस बार कुर्सी को और एक बार साब को देखा। बिल की बड़ी रकम , धूप में गाँव से बड़वानी तक का सफर सरकारी ऑफिस में बड़े साहब के कमरे में उनके सामने बैठना कितना बिल माफ होगा की धुकधुकी झेमरिया के पाँव काँप रहे थे मुँह सूख रहा था वह धीरे से कुर्सी खींच कर उसके किनारे बैठ गया। बैठ क्या गया समझो बस टिक गया। लगभग पाँच मिनिट बाद साहब ने सारे कागज और फाइल एक तरफ सरकाई और घंटी बजाते हुए उसकी तरफ भरपूर नजर डालते हुए पूछा ''क्या काम है ?''

धड़कते दिल से उसने बिल निकाल कर साहब की तरफ बढ़ा दिया तभी एक आदमी फाइलें उठाने कमरे में आया ''ये फाइलें बड़े बाबूजी को देना है। पानी भिजवाओ '' साहब ने उसे देखते हुए कहा। पानी सुनते ही उसने अपने सूखे होंठों पर जीभ फेरी। साहब ने बिल सीधा किया और देखने लगे।

''आटा चक्की का कनेक्शन है ?''

''हओ साब ''

''इतने महीने से बिल क्यों नहीं भरा ?''

''साब हूँ गुजरात गयो थो म्हारा डोकरा से अवाये नी।'' (बूढ़े पिता से आते नहीं बनता)

''छह महीने से बिल नहीं भरा है इसलिए तो इतना बिल हो गया है। तुम लोग कनेक्शन लेते हो तो बिल भरने की व्यवस्था करके क्यों नहीं जाते गुजरात ?''

''गरीब मानुस हूँ साब आप ही कई करी सको हो '' उसने हाथ जोड़ लिए। चेहरे पर पसरी लाचारी काँपते कटे फटे धूप से तपे हाथों तक उतर आई थी।

''कब गए थे गुजरात ?''

''तीन चार महीना हुई गया।''

एक बाई ने पानी का गिलास उसकी तरफ बढ़ाया वह फिर दुविधा में पड़ गया उठाये या नहीं उठाये ? किसी सरकारी दफ्तर में इतने बड़े साब के

कमरे में कुर्सी पर बैठने का ही पहला मौका था उस पर काँच के चमचमाते गिलास में पानी पीना। प्यास पानी को देखकर और तेज हो गई थी और उसकी कश्मकश भी।

''पानी लो '' साहब ने उसकी मदद की और उसने हाथ बढ़ाकर गिलास उठा लिया। पानी पीकर उसकी जान में जान आई खाली गिलास धीरे से टेबल पर रखते हुए वह धीरे से कुर्सी पर पीछे खिसक कर बैठ गया। यह मेज के उस पार बैठे साहब की सज्जनता से उपजा विश्वास था।

''तुम्हारे झोपड़े के आसपास कितने मकान हैं किसी ने तार तो नहीं टाँगा ?''

''नहीं साब तार तो नी टांग्यो, बगल में दो झोपड़ा हैं दोनों म्हारा सगा काका छे।''

''तार नहीं टाँगा तो फिर इतना बिल कैसे आ गया ?'' साहब की आवाज में अविश्वास की बू आई उसे। झेमरिया ने अचकचा कर दोनों पैर सिकोड़ लिए बड़ा साब सरकारी दफ्तर का डर फिर उस पर हावी हो गया।

''कांई बोलूं साब हउ तो यां थो ज नी'' (मैं तो यहाँ था नहीं)

''ठीक है एक आवेदन लिख देते हैं कि तुम तीन चार महीने से बाहर थे तुम्हारे कनेक्शन से बिजली चोरी हुई है इससे बिल थोड़ा कम हो जायेगा। सच बोल रहे हो ना ?''

''हओ साब सच बोलूं। केतराक पिसा कम होयेगा साब ?''

''कितने हैं तुम्हारे पास ?''

झेमरिया ने क्षणांश में हिसाब लगाया और बोला ''चारेक हजार हैं। '' बोलते हुए उसका कलेजा मुँह को आ गया कहीं बहुत कम तो नहीं बोल दिया। आठ हजार का बिल इतना कम थोड़ी हो पायेगा। अगर नहीं हुआ तो कहीं पूरा ही बिल ना भरना पड़े।

''बस चार हजार ? इतने से क्या होगा ? कहीं से पैसे की व्यवस्था करो बिल नहीं भरा तो केस कचहरी में जायेगा जेल हो जाएगी। ''

झेमरिया का कलेजा काँप गया जेल हो गई तो उसकी बँटाई चली जाएगी कमाई आधी हो जाएगी क्या करे ? मोहलत ले के घर पर विचार करे कल फिर आये ? उसने काँपती आवाज में पूरी दीनता से कहा ''आप ही कई कर सको हो साब भोत गरीब मानुस हूँ।''

हूँ कहते हुए साहब ने बिल के पीछे कुछ हिसाब लगाया एक खाली कागज पर कुछ लिखते हुए उन्होंने फिर घंटी बजाई। झेमरिया उन्हें देखते हुए सोचने लगा पता नहीं बिल केतरा काम होयगा ?साब तो कई बोली नी रिया। कूण जाने हउ कमती तो नी बोली दियो ? आठ हजार को बिल चार हजार कैसे होयगो ? साहब की चुप्पी झेमरिया को परेशान कर रही थी। पता नहीं साब ने उसकी बात का भरोसा किया या नहीं ? वो कागज में कुछ लिख रहे थे तभी एक आदमी अंदर आकर टेबल के पास खड़ा हो गया। उसने एक बार झेमरिया को देखा तो वह सकुचा गया।

कागज और बिल उस आदमी की ओर बढ़ाते हुए साहब ने कहा ''ये इनका बिल कम कर दिया है इस आवेदन पर इनका अँगूठा लगवा लेना और इसे बड़े बाबू को कहकर बिल के साथ फाइल में लगवा लेना।'' उसकी तरफ देखते हुए साहब ने कहा ''साढ़े चार हजार का बिल है ठीक है? देखो यहाँ किसी से थोड़े पैसों का इंतजाम कर लो और बिल भर दो। ''

''साब थोड़ो ओर कमती नी हो सके गरीब आदमी हूँ साब।'' ना जाने क्यों मकुन का चेहरा झेमरिया की आँखों में घूम गया इस बार उसे खर्ची जरूर देकर जायेगा। थोड़ा रो गिड़गिड़ा कर अगर दो पाँच सौ रूपये और कम हो जाएँ तो कोशिश कर ले।

साहब ने एक नजर उसकी तरफ देखा खिचड़ी बाल झुके कंधे चेहरे की बेचारगी और निस्तेज आँखें। वह हाथ जोड़े खड़ा था जिस पर खाद की बोरी का बना घिसा हुआ झोला झूल रहा था। साहब ने अपनी जेब से एक पाँच सौ का नोट निकाल कर उस आदमी की तरफ बढ़ाया। ''चार हजार इनके पास हैं ये मिलाकर बिल भरवा दो। अब से हर महीने बिल भर दिया करो।''

कुर्सी धीरे से खिसका कर अवाक वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो गया ? आठ हजार का बिल आधा हो गया। उसने चार हजार रूपये बताये तो साहब ने अपनी तरफ से पाँच सौ रूपये दे दिए। मतलब बिल इससे कम नहीं हो सकता था नहीं तो साब कर देते। वह उस आदमी के पीछे पीछे बाहर चला गया। अँगूठा लगा कर बिल भरने में झेमरिया को ज्यादा समय नहीं लगा। उसके बाद वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया। कल से जारी बैचेनी अब बिल आधा होने और बिल भरा जाने के बाद खत्म हो जानी चाहिए थी लेकिन वह अब भी बैचेन था।

तेरसिंग ने कहा था लेन मेन ने बिल कम करने को कियो है लेकिन तू बिल बरोबर पैसे ले जाजे। कदी कम नी हुआ तो फेरती चक्कर नी लगेगा। उसने एक जेब में चार हजार और दूसरी में साढ़े चार हजार रूपये रख लिए थे। साहब ने पूछा तो उसने कम वाले पैसे ही बता दिए। साब ने उसकी बात का विश्वास करके अपनी जेब से पैसे भर दिए। अपनी ही बात को काट कर साब के सामने उससे बोला ना गया। केतरा भला मानस छे साब। लेन मेन ठीकज केतो थो। जिनगी में पेली बार एतरा बड़ा आफिस में कुर्सी पर बैठाडी चमचम गिलास में पानी पीवाडो। ए झेमरिया तू कई एतरा भला मानस के धोको देवेगो ? उसने खुद को धिक्कारा। अब क्या करे ? साब का पैसा वापस करके खुद को झूठा साबित कर दे कि रहने दे साब को धोके में कि उसके पास पैसे नहीं हैं। इन पाँच सौ रूपये में मकुन के लिए बढ़िया लुगड़ा और पायल भी आ जाएगी। वह उसे थोड़े पैसे हाथ खर्च के दे देगा। क्या करे क्या नहीं की कशमकश में वह देर तक पेड़ के नीचे बैठा रहा। सूरज सिर पर आ गया झेमरिया उठ कर खड़ा हो गया उसने देखा उसकी छाँव छोटी हो गई है। उसने गले में पड़े गमछे से पसीना पोंछा जेब में रखे रूपये देखे उसमे से पाँच सौ का नोट निकाल कर बाकी रूपये सँभाल कर रखे और साहब के कमरे की तरफ चल दिया।

कविता वर्मा

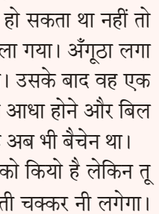

जन्म : टीकमगढ़
शिक्षा : बीएड, एमएससी
प्रकाशन : उपन्यास छूटी गलियाँ, कहानी संग्रह - परछाईयों के उजाले, कछु अकथ कहानी, मातृत्व पर, पहले ई-उपन्यास, 'आईना सच नहीं बोलता' की सहलेखिका कई ख्यात पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन एवं कई सम्मान।
संपर्क : 542-ए तुलसीनगर इंदौर 452010
मो.9827096767
ई-मेल : kvtverma27@gamil.com

garvi gurjari
Gujarat State Handloom & Handicrafts Development Corporation Ltd.
(A Government of Gujarat Undertaking)

Patola | Bandhani | Ajrakh | Rogan | Embroidery | Sujani
Patch Work | Tangaliya | Applique & Many More...

Now purchase exclusive
Handlooms and Handicrafts
of Gujarat

Showrooms:
New Delhi | Bengaluru | Hyderabad | Kolkata | Chennai | Lucknow | Mumbai | Ahmedabad | Surat
Kevadiya Colony | Rajkot | Bharuch | Bhuj | Gandhinagar | Anand | Bhavnagar | Vadodara | Surendranagar

Shop online: www.garvigurjari.in

अविरत विकास अग्रसर गुजरात

गुजरात दिखलाता है देश को प्रगति का मार्ग

- जनवरी से अक्टूबर-२०१९ तक आईईएम (इंडस्ट्रियल ऑन्त्रेप्रेन्योर्स मेमोरेंडम) के अंतर्गत देश में हुए कुल पूंजी निवेश में ५१ फीसदी से ज्यादा हिस्सेदारी के साथ गुजरात देशभर में अव्वल
- निर्णायक सरकार का ऐतिहासिक निर्णय: राज्य की सभी आरटीओ चेकपोस्ट को कीया बंद
- नए **MSME** उद्योग शुरु करने के लिए गुजरात सरकार की क्रांतिकारी पहल : ३ साल तक राज्य में किसी भी प्रकार के निर्माण कार्य की मंजूरी तथा लाइसेंस के बगैर नई **MSME** इकाई शुरु करें
- सूर्य ऊर्जा रुफटॉप योजना: समग्र देश में पहली बार २ लाख परिवार अब सूर्य ऊर्जा से उत्पन्न मुफ्त बिजली का स्वयं करेंगे इस्तेमाल और बाकी बिजली बेचेंगे सरकार को
- व्हाली दीकरी योजना: वार्षिक २ लाख रुपए तक की आय वाले परिवारों को पहले दो बच्चों में से बेटियों को कक्षा १ में प्रवेश के समय ४ हजार, कक्षा ९ में ६००० और १८ वर्ष की आयु होने पर १ लाख रुपए की सहायता
- पहले चार चरणों की अभूतपूर्व सफलता के बाद सेवा सेतु कार्यक्रम के पांचवें चरण का राज्यव्यापी प्रारंभ: नागरिकों की समस्याओं का स्थानीय स्तर पर समाधान : सेवा सेतु कार्यक्रम के जरिए ९९.८१ फीसदी आवेदनों का स्थल पर ही त्वरित निस्तारण

गुजरात के सर्वांगीण विकास के लिए राज्य सरकार प्रतिबद्ध है
- नीतिनभाई पटेल, उप मुख्यमंत्री, गुजरात

SARDAR

GSFC Agrotech

Milieu of Benchmarks....
Beyond Convention

Our Endeavours :

Organized Agri-retail | Agri Advisory & Solutions

R&D backed Products - Boronated NPK, SAG Gold, AS (Granular) | D2D - eGram

GSFC Agrotech Limited

Wholly Owned Subsidiary of

GUJARAT STATE FERTILIZERS & CHEMICALS LIMITED

Fertilizernagar - 391 750, Vadodara, Gujarat. www.gsfclimited.com

Toll Free No.: 1800 123 5000

आदिजाति विकास विभाग, गुजरात सरकार, गाँधीनगर

गुजरात में उमरगाम से लेकर अम्बाजी तक पूर्व पट्टी के आदिजाति विस्तार में कुल 53 तालुकाओं का समावेश होता है जिसमें अनुसूचित जनजाति की बस्ती 89.17 लाख है जिसके ऊपर गुजरात सरकार ने आदि जाति के सर्वांगी कल्याण कार्यक्रम वनबन्धु कल्याण योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित मुद्दों पर कार्य 1,00,954 करोड़ रू. का आवंटन किया गया।

सर्वांगी विकास को समर्पित मुख्यमंत्रीजी के 10 मुद्दों का कार्यक्रम (वनबन्धु कल्याण योजना)

- 5 लाख कुटुम्बो के लिये रोजगार लक्षी कार्यक्रम
- शिक्षण की गुणवत्ता और उच्च अभ्यास पर भार
- आदिजाति विस्तार का आर्थिक विकास तीव्रता से हो
- सभी के लिए आरोग्य
- बिजली की सार्वत्रिक उपलब्धता
- सभी के लिये घर
- पीने के लिये पानी
- सिंचाई
- बारमासी रास्ते
- शहरी विकास

गुजरात के बहुलक आदिजाति विस्तार 14 प्रायोजना विस्तार में विस्तारित है

1- पालनपुर-बनासकांठा
2- खेडब्रह्मा-साबरकांठा
3- दाहोद-दाहोद
4- गोधरा-पंचमहाल
5- छोटाउदेपुर-छोटाउदेपुर
6- राजपीपला-नर्मदा
7- भरूच-भरूच
8- मांडवी-सूरत
9- सोनगढ़-तापी
10- वांसदा-नवसारी
11- वलसाड़-वलसाड़
12- आहवा-डांग
13- मोडासा-अरवल्ली
14- लुणावाडा-महिसागर

शुभेच्छक आदिजाति विकास विभाग

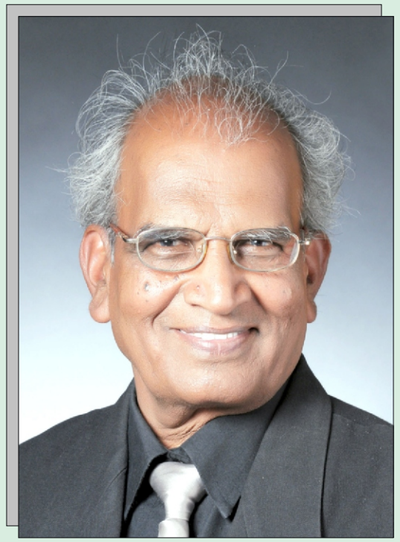

महेन्द्र भानावत

संपर्क : 352, श्रीकृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास,
उदयपुर-313001
फोन - (0294) 2412174

जन्म : उदयपुर जिले के छोटे से गाँव कानोड़ में 13 नवम्बर 1937। यह कस्बा उदयपुर से करीब 100 किलोमीटर दूर कानी मीणी द्वारा बसाया गया।

शिक्षा : मोहनलाल सुखाड़िया वि.वि.उदयपुर से एम.ए. (हिन्दी) एवं 1968 में 'राजस्थानी लोकनाट्य परम्परा में मेवाड़ का गवरीनाट्य और उसका साहित्य' विषय पर पीएच.डी.।

सेवा कार्य : भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर से निदेशक पद से 1995 में सेवानिवृत्त।

लेखन-प्रकाशन : देश-विदेश की 500 से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में दस हजार के करीब हिन्दी एवं राजस्थानी में रचनाएं प्रकाशित तथा लोककला-साहित्य संस्कृति से संबंधित 100 से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन।

सम्मान एवं पुरस्कार : * पश्चिम क्षेत्र संस्कृति केन्द्र, उदयपुर द्वारा शिल्पग्राम उत्सव के उद्घाटन अवसर पर एक लाख पच्चीस हजार रूपये का कोमल कोठारी लोककला पुरस्कार। * कोलकाता के विचार मंच द्वारा 51 हजार रूपये का कन्हैयालाल सेठिया पुरस्कार * राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर द्वारा फेलो सम्मान। * उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा राजस्थान के थापे, मेहंदी राचणी तथा अजूबा राजस्थान पुस्तक पर पं.रामनरेश त्रिपाठी पुरस्कार। * महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन, उदयपुर महाराणा सज्जनसिंह पुरस्कार। * हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा साहित्य वारिधि सम्मान।

सदस्य-मनोनयन : राजस्थान सरकार द्वारा * पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र * राजस्थान साहित्य अकादमी * राजस्थान संगीत नाटक अकादमी * जवाहर कला केंद्र * राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी में सदस्य मनोनीत।

पत्र-संपादन : * रंगायन * लोककला * पर्यटन दिग्दर्शन * चौथा संसार * जय राजस्थान * जलते दीप * मनु टाईम्स * सुमन लिपि * प्रतिदिन * उदयपुर दोपहर * पब्लिक पड़ताल * शब्द रंजन।

अधिस्वीकृत पत्रकार : राजस्थान सरकार द्वारा अधिस्वीकृत पत्रकार।

ऑफिस :- 13-14, म्युनिसिपल शॉप, चेतना होटल के पास, चेतक सर्कल, उदयपुर-313001
फोन - (0294) 2429291 मोबाइल - 9351609040

बालपन की याद में मेरे लेखन की जड़वेल

डॉ. महेन्द्र भानावत

मेरा बचपन विडम्बनाओं की अलियों-गलियों में बीता। पिता का तो मुझे चेहरा भी याद नहीं। पूरी पिरोल में विधवाएं सुबह तीन बजे से रात दस बजे तक घाणी के बैल की तरह घर के काम धंधे में लगी रहतीं। मेरी मां को सब डेलूमासी कहते। वह जग-डेलूमासी ही थी। सुबह मुंह झांकते वह घट्टी पकड़ती और मोटा तगारा भर मोल का पीसणा पीस विश्राम लेती।

मां चडक निकालती। किसी की नस-पर-नस चढ़जाती, हलन-चलन रूक जाती तब उस जगह मूसल का हल्का दाब दे दुखिये को चंगा करती। मां के साथ एक लुगाई होती। एक सेकु और दूसरी मेकु बन मूसल के दोनों सिरे पकड़ रोग-स्थल से उतारती तब संवाद चलता-

'कई सेकु, बोल मेकु, बाण्या रे जाइगा, घी-खीचड़ी खाइगा, सेक्या री चडक काढ़ीगा।'

पांच-सात बार ऐसा करने से चडक जाती रहती। उसी पिरोल में एक हेका माऊ थी जो गीलट के छोटे कटोरे में पानी से करकरी बींटी (अंगूठी) का आंख में छींटा दे घोखा निकालती। एक चन्दरी बुआ थी जो विवाह के वक्त चंवरी की धुंआ से अंधी ही हो गई। पति का कोई सुख नहीं देखा और रंडवा गई। वह नित हमेश सोने से पूर्व अपने पोपले मुंह से गाकर सोना-रूपा की कहानी सुनाती। वह कहानी और उसके बोल अभी भी मुझे याद हैं -

'उतरो-उतरो ए म्हारी सोन्याबाई बेन्या, रूपाबाई बेन्या, ढोल नगाड़ा बाजीरया, परणवा री वेळां टली रई।' यह कहानी कई प्रांतों में सुनने को मिली।

मैंने अपने नानपण का अंधेरा पक्ष ही देखा। मां महीने में दस दिन बहरी काकी के साथ छाणे (सूखे पोटे, कण्डे) बीनने छापरड़े जाती। पांच-सात किलोमीटर घूमकर बड़ा टोकरा भर छाणे का भारा लाती। पसीने से तर-बतर होकर आती।

प्रख्यात कथाकार जैनेन्द्र कुमार के साथ।

खाने में मकई, ज्वार, जौ के रोटले देती। कभी राब-छाछ, घाट-बाट रांधती। थूली-खीचड़ी बनाती। अरर-फरर मामूली घी चोपड़ती। मेहमान आता तब उसके लिए गेहूं की रोटी, कढ़ी-लपसी, चंवले-चावल बनते। तब हमें भी जैसे पांच पकवान का स्वाद मिलता।

मां संतोषी सदा सुखी थी। घर की बात घर में रखती। तीसरा कान तक नहीं जान पाता। वह पुरानी मान्यताओं, ढकोसलों और दुखियानुसी विचारों की नहीं होकर सुधारवादी, साधु-संतों की संगत कर धर्मध्यान वाली थी। आचार्य तुलसी जब कानोड़ पधारे तो उन्होंने मां से कहा, 'काले कपड़े पहनना छोड़ दो, धोळे पहनो, आगे बढ़ो।' उनकी सीख गांठ बांध मां ने सफेद कपड़े धारण किये तो सभी विधवाएं श्वेत वस्त्र धारण करने लग गईं। एक पं. उदय जैन थे। उन्होंने स्कूल खोला। मां से कहा, 'बच्चों को स्कूल भेजो। पढ़-लिखकर होशियार बन जायेंगे तो अंधेरा मिट जायेगा। जीवन सार्थक हो जायेगा।' मां ने उनकी बात मान हमें पढने भेज दिया।

मां को अनेक कहावतें, कथा-वार्ताएं, गीत-गाळें, भजन, स्तवन, थोकड़े याद थे। हर वार-त्यौहार, उत्सव-आयोजन मनाती। राग-रंग में शामिल होती। सारे नेगचार जानती। मैं सब जानता, देखता, समझता। उत्सुकता बनी रहती सबको गहराई से खोद-खोदकर पूछने की। रंजन के अवसर पर वह ख्याल, तमाशे, झामटड़े, टूंटिया-टूंटकी में मर्यादा रखती, सहयोग करती। आठवीं की पढ़ाई के बाद मां ने आगे पढने बाहर भेज दिया। खास सगे काका-बाबा तो थे नहीं सो वे हमारी भणाई से ईर्ष्या करते।

मां होशियार और हौंसले वाली थी। पढ़ी-भणी नहीं होने पर भी बुद्धिमान गुणी थी। हमारा बाप-दादों का गांवड़ा सम्भाला। वहीं ग्रामीणों के साथ वणज-व्यापार करती। धैर्य नहीं खोया। मैंने बाहर ही रह आगे की पढ़ाई की और बी.ए. पास कर उदयपुर आकर नौकरी कर ली। मेरे से बड़े भाई, जिन्हें दादाभाई कहता नरेन्द्र भानावत भी ऐसे ही पढ़े-बढ़े। वे रास्ता करते गये। मां मौके बेमौके गीत-गाळें जोड़तीं। नये-नये रचाव करती। मैं भी चौथी कक्षा से कविता करना सीख गया।

घर-गृहस्थी के कामों से निवृत्त हो औरतें रेंटिया (चरखा) कातती। सुबै गांधी आश्रम से पुण्यां लाती। संध्या को कूकड़ी कात दे आती और कताई का मेहनताना ले आती। रेंट्ये की कमाई से गृहस्थी चलती। पुरूषार्थी, पराक्रमी और स्वाभिमानी मां कहती, रेंट्ये के तार मनुष्य के स्वांसों के तार जैसे हैं। कपास के तार-तार मिल रूई बनाते। रूई की पुण्यें। पुण्यों से कूकड़ी और उससे रेजा बनता। कपास का फूल सब फूलों में श्रेष्ठ। उसमें रूप-रस-गंध नहीं। वह सड़ता-गलता नहीं पर नंगी दुनियां को ढकता है।

वह सीख देती, लुगाई सौलह सिणगार से शोभती है। रेंटिया भी सौलह अंग-प्रत्यंग से पूरा शोभायमान होता है और उसके अंगों के नाम बताती- ताण्यां, तूंबड़, कूकड़पन्यो, माळ, ओदाणी, कूकड़ी, ताकरो, पाटकड़ी, घोड़लो, चमरको, चरकली, भूंगली, पूणी, माचली, ऊंगनी और कातने वाली कतायण। चरखे का गीत चलता-

'रेंट्यो तो है रंग रंगीलो, ताण्यां है लाल गलाल, गांधीजी दरसण दे गया। वायल मलमल छोडरो बैन्यां, करल्यो खादी सूं हेत, गांधीजी दरसण दे गया।'

उसका हमारे पर यह असर पड़ा कि हमने खद्दर पहनना शुरू कर दिया। माथे पर गांधी टोपी लगाई। ऐसे पूरे गांव पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सबके सिर पर गांधी टोपी नजर आने लगी। स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रभाव यह रहा कि उस छोटे से गांव में 16 स्वतंत्रता सेनानी हुए।

पांच-छह वर्ष की उम्र में मुझे बड़े जोर का ताव (बुखार) चढ़ा। पूरा शरीर धूजणी दे गया। एकबार तो घर वालों ने मेरे जीने की आश ही छोड़दी। पिताजी भी ऐसे ही बुखार से चले गये थे सो मां बड़ी घबराई। दवादारू करने वाले अडक इलाजी थे। समझे बुझे झाडफूंखे बुलाये गये मगर ताव ने अपने तेवर नहीं छोड़े। मां दो जाड़े गोदड़ों में ढककर मुझसे लिपट भूंके-भूंके रोने लगगई। उसका रोना सुन गवाड़ी की महिलाएं इकट्ठी हुईं। एक अन्दर भाभा थे। कट्ठी छाती रख मां को ढाढ़स बंधाया। कहा, 'हिम्मत रखो। भगवान पार लगायेगा। मां का बांगटा पकड़ उठाया और बोले, रावले में गवरी नाच रही है। इसे वहां ले जाकर नार (शेर) के नीचे निकालो। देवी नारसिंघी की शरण में सौंप दो।'

मां काई-काई उठी। हाथों से खीले बम्बोरा के दो मोट सूत के रेजे के बने पछेवड़े ओढ़ाकर, छाती से कट्ठा लिपटा रावजी के महल ले गई। वहां नार बना पुरूष बड़ा आक्रामक दरसाव दिये स्वांग में था। उसके पूरे शरीर पर सिन्दूरी - काली टिपकियां लगी, साक्षात् शेर सा रौद्र रूप किये था। जीभ बाहर निकली लपलपा रही थी। पूरा शरीर कांप रहा था। वह लम्बायमान की मुद्रा लिए एक हाथ-पांव पर टिका चारों ओर देखता गुस्सेल बना हुआ था। दूसरा हाथ और टांग ऊपर किये हुए पांचों उंगलियां हवा में घुमाता हाताहूती कर रहा था। मां उसके पास पहुंची। मेरे सहित झुकी और बोली, 'आईनाथ, यह तेरी शरण में है! तू जाने तेरा काम जाने। इसका जीना-मरना तेरे हाथ में है।'

सोवन जीजां (बड़ी बहन) साथ में थी। उसने और मां ने नार बावजी के नीचे से मुझे तीन बार निकाला। भागजोग, घर आते-आते मेरा ताव टूटता लगा और मैंने आंखें खोलदी। धूजणी जाती रही। वह दिन और आज का यह दिन, आईनाथ ने सहाय की तो उसके बाद मुझ पर किसी बुखार की छाया तक नहीं पड़ी। देवी के मोरपंख के झाड़ू. से मेरी तपन ही नहीं मिटी, मांदगी का ऐसा छूमंतर हुआ कि मैंने अपने में उजास भरते देखा। इसे चेतन-अवचेतन का कमाल ही कहूं कि आगे जाकर इसी गवरी पर मैंने शोध कर पीएच. डी. की उपाधि पाई।

देवी नारसिंघी के हजार नाम। वही कालका, कालिका, ज्वाला, धरती की धणियाणी, जगत की जरणी, दुखलेवी, सुखदेवी। गवरी, गोरज्या। आदिवासी भील-परिवार की बहिन-बेटी सगती पारवतां। शिवजी महादेव की परणी कैलाश पर्वत वासिनी है।

वह कहानी दूसरी है, कैसे मैं लोकदेवता कल्लाजी राठौड़ की शरण में गया। वे मुझ पर टूटमान हुए। कई प्रांतों का भ्रमण करा दृश्य-अदृश्य जगत की दर्शना कराई। भूतों और दिव्य आत्माओं का मेला दिखाया। जब-जब भी गादी पर उनके दर्शन किये, लिखते रहने का मंत्र दिया सो मैं अपनी लेखनी के ओरेदोरे चल रहा हूं या लेखनी मुझे अपने ओरेदोरे चला रही है, समझ नहीं पा रहा हूं लेकिन मोटी सच्चाई तो यह है कि मेरे लेखन में मेरे बचपन की यादें और मां की घुटकी ही जड़वेल बनी हुई है।

जहां मुझे लोककला की आंख मिली

पूरे देश में राजस्थान ही वह पहला प्रांत है जिसने सर्वप्रथम लोककलाओं के महत्व को समझा। उनके उन्नयन का बीड़ा उठाया। उनके विकास और प्रचार-प्रसार का जिम्मा लिया। लोक कलाकारों की सुध ली। उन्हें सम्मानजनक प्रदर्शन-मंच दिया। उनकी कला को प्रोत्साहन दिया। उनकी पहचान बनाई। विशिष्ट प्रतिष्ठा और राजकीय सम्मान दिया। लोककलाओं का सर्वेक्षण, अध्ययन, लेखन, प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हुआ। लोककला संस्थाएं शुरू हुईं। लोककला विषयक पत्र-पत्रिकाएं निकाली गईं। विविध समारोह और संगोष्ठियों का आयोजन किया गया।

इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों ने पारम्परिक कलाओं के महत्व को

प्रसिद्ध लोकधर्मी व्यक्तित्व श्री देवीलाल सामर के साथ भानावतजी।

समझा। कई अज्ञात कला-विधाएं पुनर्प्रतिष्ठित हुईं। अल्पज्ञात को पुनर्जीवन मिला और कलाकारों ने यह समझा कि उनके घरों में जो परम्परागत कलाएं पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षित होती आई हैं वे महत्वपूर्ण तथा मूल्यवान हैं। उनकी चमक फीकी नहीं होने देनी है। वे हेय नहीं, गेय हैं, लुप्त, गुप्त तथा समाधि देने वाली नहीं, अपितु दर्शनीय एवं प्रदर्शनीय हैं।

वे लोकधर्मी हैं अतः जीवनधारा की प्रबल आधार तथा हमारी अन्तश्चेतना की संजीवनी हैं। इसलिए राजस्थान को लोककलाओं का अलमबरदार कहा गया है। लोककलाओं की जो विविधता तथा उनमें निहित जीवनरसता यहां मिलती है, वह अन्यत्र नहीं मिलेगी। इसीलिए यह प्रांत लोककलाओं का अजूबा अजायबघर भी कहा गया है। यहां के लोकरंगी वैभव, परम्पराशील रंगदर्शन और उल्लसित होते जन-मन-रंजन के अप्रतिम उमाव, अद्भुत आनन्द तथा अकूत उत्साह को देखकर ही तो पं. जवाहरलाल नेहरू ने इसे रंगों का प्रदेश कहा।

इन लोककलाओं के उन्नायक-सूत्रधार थे देवीलाल सामर जिन्होंने लोककला जैसी अप्रौढ़और जंगली समझी जाने वाली विधा के उन्नयन का न केवल सपना देखा अपितु उसे अपनी आंखों से साकार होता हुआ भी देखा। यह सपना था लोककलाओं और उनसे जुड़े कलाकारों को समाज में उचित सम्मान और प्रतिष्ठा दिलाने का, देश के सांस्कृतिक विकास में लोककलाओं की आधारभूत भूमिका की स्वस्थ समझ और सुविचारित चिंतन का, शिक्षण को सर्वव्यापी बनाने के लिए उसमें लोकानुरंजनकारी लोकशिक्षण के प्रवेश का, शिक्षालयों तथा विश्वविद्यालयों में लोकसाहित्य के पठन-पाठन का, लोकनृत्यों का मुख उज्वल होने का, लोकगायन-वादन को समुचित दर्जा दिलाने का, कठपुतलियों में छिपे कला प्रयोजन को विश्वमंच देने का, पिछड़े, दलित, अनपढ़और हीन समझे जाने वाले कलाकारों और उनकी कला-चेतना को अंचल से अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश तथा पहचान देने का, परित्यक्त जातियों और उनकी कलाओं को राष्ट्रीय सम्मान देने का, लोककलाओं को रज से रजत बनाने का।

इनके लिए देवीलाल सामर ने उदयपुर में 22 फरवरी 1952 को

प्रसिद्ध आलोचक डॉ.नामवरसिंह के साथ महेन्द्र भानावत।

भारतीय लोककला मण्डल नामक संस्था की स्थापना की। पिछड़ी और अछूती समझी जाने वाली जातियों के साथ जुडने और उनके नृत्य-गीतों को अपनाने वाले सामरजी स्वयं अपनी बनिया जाति में तिरस्कार के शिकार हुए। अन्यों ने भी इन्हें सुख नहीं दिया। नाथद्वारा के श्रीनाथजी मन्दिर में तो इनका प्रवेश ही रोक दिया गया, लेकिन सामरजी निराश और हताश नहीं हुए। धीरे-धीरे लोगों ने इनके कार्य को समझा और सराहा भी। राजस्थान सरकार का ध्यान भी इस ओर गया।

मुख्यमंत्री जयनारायण व्यास बड़े कलापारखी थे। वे अच्छा और उपयोगी काम करने वालों के प्रशंसक, हमदर्द और पृष्ठपोषक थे। खुद भी नाच के शौकीन थे। उन्होंने जब सामरजी को अपना बोझा ढोते, गांव-गांव भटकते, कलाकारों को खोजते देखा तो कहा कि जहां मैं दौरे पर जाता हूं वहां मेरे साथ चलो। सामरजी उनके साथ हो लिये। दौरों के दौरान सामरजी को राजस्थान का पूरा आभास और उसकी समस्त कलात्मक धरोहर को नजदीक से देखने का सुअवसर हाथ लग गया। यही नहीं, व्यासजी ने अपने निजी फंड से पांच हजार रूपये का अनुदान भी दिया। तब यह बहुत बड़ी राशि थी। कल्पनातीत सहयोग था। सामरजी का गाड़ा दौड़ पड़ा।

फिर तो राजस्थान समाज कल्याण विभाग ने भी मदद की। राजस्थान की पिछड़ी जातियों के सांस्कृतिक सर्वेक्षण का काम दिया। भील जीवन पर 'कुदरत के लाडले', घुमक्कड़ जातियों पर 'संस्कृति के रखवारे' नामक वृत्तचित्र बने। राजस्थान के लोकनृत्य, लोकनाट्य, लोकसंगीत, लोकोत्सव तथा लोकानुरंजन पर पुस्तकें छपीं। सरकार के सहयोग से ही पहलीबार अखिल राजस्थान लोकगीत समारोह (1953) शुरू किया गया। उदयपुर के मोहता पार्क में आयोजित इस समारोह की स्वर लहरियां सुनने वालों के कान अब भी थके नहीं हैं। ऐसा ही लोकनृत्य समारोह (1956) और लोकसंगीत और लोकानुरंजन समारोह (1957) में हुआ।

कला मण्डल के माध्यम से राजस्थान विकास विभाग ने उदयपुर के सन्निकट बेदला गांव में अखिल राजस्थान लोककलाकार प्रशिक्षण शिविर (1958) आयोजित किया। एक-एक पखवाड़े के कुल चार शिविर हुए जिनमें राजस्थान के अच्छे-उम्दे विविध कलारूपों में निष्णात कलाकार सम्मिलित हुए। तब मैं कला मण्डल में आया ही आया था और सामरजी ने अपने निर्देशन में इस शिविर का मुझे संयोजन ही दे दिया। राजस्थान का ही नहीं, बल्कि पूरे देश का, यह पहला ऐसा लोककलाकारों के प्रशिक्षण का शिविर था जिसमें लोककलाकारों द्वारा अपने-अपने रंग-ढंग से दिये जा रहे प्रदर्शनों की मूल आत्मा को बनाये रखते हुए उन्हें जनरूचि के अनुकूल बनाया गया।

ऐसे प्रशिक्षित कलाकारों का एक समारोह रखा गया जिसमें राजसमन्द के केलवा गांव के बहुरूपिया परसराम को सर्वश्रेष्ठ कलाकार घोषित कर राज्य सरकार द्वारा सांस्कृतिक अधिकारी का जन सम्बोधन सम्मान प्रदान किया गया। इसी शिविर में जीजोट के नाथू भाट के कठपुतली दल से पारम्परिक कठपुतली शिल्प में ही रामायण नाटिका की रचना की गई जिसका पहला प्रदर्शन नागौर में 02 अक्टूबर 1959 को पंचायत राज के शुभारम्भ पर पं. जवाहरलाल नेहरू के समक्ष किया गया।

ऐसे ही सामरजी द्वारा अखिल भारतीय कठपुतली समारोह (1959 तथा 1964), अखिल भारतीय लोककला संगोष्ठी (1972 तथा 1978), राजस्थान बाल कठपुतली समारोह (1976 तथा 1977) तथा कला मण्डल की रजत जयंती पर लोकानुरंजन मेला (1978) आयोजित किया गया। प्रवासी राजस्थानियों के लिए मुम्बई में रंगीला राजस्थान समारोह (1960) किया गया। उदयपुर में ही 1967 के गणतंत्र दिवस समारोह में कला मण्डल के प्रयास तथा प्रशिक्षण द्वारा 600 बालिकाओं द्वारा घूमर नृत्य का प्रदर्शन सर्वाधिक सराहा गया।

राजस्थान दिवस (1954) पर सामरजी ने अपने कलाकारों द्वारा चम्बल नृत्यनाटिका का प्रदर्शन जयपुर में मुख्यमंत्री जयनारायण व्यास के समक्ष किया। दिल्ली में राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद तथा प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के समक्ष रासधारी नृत्यनाटिका प्रस्तुत की गई। ये सारे कार्यक्रम न केवल राजस्थान में, अपितु पूरे देश में पहलीबार सर्वप्रथम हुए। जयपुर में जब पहलीबार आकाशवाणी केन्द्र का शुभारम्भ हुआ तो सामरजी ने न केवल लोककलाकारों की सूची भेजी, अपितु लोकगायिका नारायणीदेवी, जानकीदेवी को प्रस्तुत किया।

लोककला मण्डल में 1953 में ही लोककला संग्रहालय प्रारम्भ कर दिया गया। यहीं से 'लोककला' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। सन् 1965 का वर्ष कितना स्मरणीय हो गया जब बुखारेस्ट में हुए तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कठपुतली समारोह में सामरजी ने मात्र अपने तीन कलाकारों के साथ भारत का प्रतिनिधित्व किया और विश्व का प्रथम पुरस्कार अर्जित किया। तबसे भारत, राजस्थान कठपुतली कला का सिरमौर ही नहीं, इस कला की जन्मस्थली के रूप में भी ख्यात-प्रख्यात बना विश्व-विभूषित है। आज राजस्थान की पड़, कावड़ तथा भवाई, तेराताली, कच्छीघोड़ी, चकरीनृत्य की जो पहचान विश्वव्यापी हुई मिलती है उसके पीछे सामरजी की सूझबूझ और कलादृष्टि का बहुत बड़ा हाथ है। सरकार के तो बड़े हाथ हैं ही।

राज्य सरकार द्वारा स्थापित संगीत नाटक अकादमी (जोधपुर) का योगदान भी लोककला संरक्षण का पूरा अध्याय है जिसके माध्यम से मुख्यतः रेगिस्तानी इलाके के लंगा, मांगणियार समुदाय में प्रचलित लोकसंगीत तथा गायक एवं वादक कलाकार खोजे गए। उन्हें प्रतिष्ठाजनक मंच मिला, प्रोत्साहन मिला। जो पीढियों से अपने ही क्षेत्र के यजमानों के आश्रित बने हुए थे उन्हें राजस्थान का परिभ्रमण ही नहीं, पूरे देश तथा विदेश में जो मान और सम्मान मिला वह अद्‌भुत, अकल्पनीय और अनिर्वचनीय ही कहा जायेगा।

खड़ताल वादक सिद्दीक को पद्मश्री मिलना और कोहिनूर बालक का खड़ताल नर्तक के रूप में सबकी आंखों का सितारा बनना, अंधेरी गुप्प अनाम बस्तियों में यकायक रोशनी का रथ घुमाना है। भजन गायिका सोहनीदेवी की स्वर-लहरियों ने तो सिनेमा तक को प्रभावित किया। 'केसरिया बालम' गीत की अमर गायिका के रूप में पद्मश्री अल्लाजिलाईबाई का 'पधारो म्हारे देस' हेला तो राजस्थान आमंत्रण का शीर्षस्थ सिम्बोलिक रेला ही बन गया है। कालबेलिया नर्तकी गुलाबो के भाग्य का क्या कहना' उसकी लोकप्रियता के चलते जगह-जगह डुप्लीकेट गुलाबों से भी मेरा साक्षात्कार हुआ।

किसको पता था कि छोटे-छोटे गांव और वहां की कलाएं जग विख्यात हो जायेंगी? बसी की काष्ठकला हो या मोलेला की लोकदेवी-देवताओं की मिट्टी की मूर्तिकला, बीकानेर की उस्ता कला हो या फिर प्रतापगढ़की थेवा कला, आकोला, सांगानेर, बगरू की छपाई कला हो या जयपुर की जूतियां, बूंदी के लाख के चूड़े, अपनी पहचान बनाकर राजस्थान को रौनक देंगे! राज्य सरकार द्वारा हर वर्ष उत्कृष्ट एवं बेजोड़ कलाधारक हस्तशिल्पियों को पुरस्कृत करने से निश्चय ही यहां की खोई-सोई कला पुनः जाग्रत एवं जीवन्त हुई है। गुदने, मेहंदी तथा माण्डनों की कला तो न जाने कितने ओर-छोर नाप चुकी है।

सामरजी से प्रेरणा लेकर भीलवाड़ा में निहाल अजमेरा ने गैर समारोह शुरू किया तो कई गांवों की विविध गैर विधाएं जाग उठीं। होली त्यौहार की रंगीनियां बढने लगीं। खिलाडियों में जोश आया। ऐसा ही एक समारोह बाड़मेर के कनाना गांव में मगराज जैन ने प्रारम्भ किया। इसकी हवा विदेशों तक पहुंची। जैसलमेर में नन्दकिशोर शर्मा ने लोककला संग्रहालय प्रारम्भ किया जिससे उधर की लोकसमृद्ध धरोहर को संरक्षण मिला। संगीत नाटक अकादमी में अध्यक्ष रमेश बोराणा ने राजस्थानी लोकवाद्यों का अद्वितीय एवं अलभ्य संग्रहालय बनाया।

विश्वविद्यालयों में लोककलाओं पर सेमीनार, संगोष्ठियां, समारोह शुरू हुए। पाठ्य पुस्तकों में इन्हें सम्मिलित किया गया। शोधकार्य प्रारम्भ हुए। नये-नये विषय ढूंढे जाने लगे। साहित्य के अलावा संगीत, इतिहास, गृहविज्ञान, समाजशास्त्र, चित्रकला जैसे विभाग भी लोकजीवन की धडकनों और धमनियों की सुध लेने लगे। ऐसे पांच सौ से अधिक शोधप्रबंध और लघु शोधप्रबंध लिखे गये जो अजूबा राजस्थान के शत-सहस्त्र लोकरंगों का उकेरण प्रस्तुत करते हैं। यहीं से लोकसाहित्य, लोकसंस्कृति, रंगयोग, रंगायन जैसी पत्रिकाएं निकाली गई। लोककला विषयक प्रकाशनों की सूची दांतों तले उंगली दबाने जैसी है। दो सौ के ऊपर तो राजस्थानी लोकगीत की पोथियां ही मिल जायेंगी। लोककलाओं की संस्थाएं भी जितनी यहां हैं, अन्यत्र नहीं हैं। रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत तथा कोमल कोठारी जैसे सिद्ध लोककलाविद् इसी भूमि की देन हैं जो लोककलाओं के भोमिया के रूप में सर्वत्र समादरणीय बने हुए हैं।

लोककला संस्कृति को उजलास देने के लिए स्थापित पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर और जवाहर कला केन्द्र, जयपुर हमारे गौरव स्तंभ हैं। पारम्परिक एवं विलुप्त होती जा रही कलाओं की खोज, उनका संरक्षण एवं संवर्द्धन करने तथा उन्हें जनाश्रयी बनाने और समन्वित विकास करने के लिए जवाहर कला केन्द्र की स्थापना की गई। राजस्थान की कला और कलाकारों की उन्नत पहचान बनाने के लिए देश में स्थापित सात सांस्कृतिक केन्द्रों में से तीन का सदस्य राजस्थान है। हस्तशिल्पियों के संरक्षण के लिए तथा लोककलाओं के पुनरूत्थान की दृष्टि से शिल्पग्राम दूर-सुदूर तक जाना जाता है।

राज्य के पर्यटन, कला एवं संस्कृति विभाग ने लोककला की सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण एवं यादगार बनाये रखने के लिए पारम्परिक मेलों के नवीनीकरण के साथ कुछ नये मेले-उत्सव प्रारम्भ किये, जैसे ऊंट उत्सव (बीकानेर), मरू उत्सव (जैसलमेर), हाथी उत्सव (जयपुर), मेवाड़ उत्सव (उदयपुर), मारवाड़ उत्सव (जोधपुर), दशहरा मेला (कोटा), पुष्कर मेला (अजमेर) आदि। यही नहीं, पर्यटन विकास निगम द्वारा जगह-जगह जो ठहर-स्थल बनाये गए, उनके नाम भी बड़े कलात्मक, संस्कृतिनिष्ठ और आंचलिक किंवा स्थानीय सांस्कृतिक बोध के सूचक हैं।

इनमें- गणगौर एवं तीज (जयपुर), कजरी (उदयपुर), गवरी (ऋषभदेव), मूमल एवं सम ढाणी (जैसलमेर), गोकुल (नाथद्वारा), खादिम (अजमेर), घूमर (जोधपुर), चंबल (कोटा), ढोलामारू (बीकानेर), कामधेनु एवं झूमर बावड़ी (सवाई माधोपुर), हवेली (फतहपुर), चंद्रावती (झालावाड़) प्रमुख हैं। राज्य के सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशालय द्वारा प्रकाशित द्वैमासिक 'राजस्थान सुजस' राजस्थान का ऐसा मुंह बोलता आईना है जिसके माध्यम से कला, संस्कृति, इतिहास, पुरातत्व, पर्यटन, नीति, शिक्षा, राजनीति, समाज, धर्म, अध्यात्म आदि से संबंधित लबालब रंग-सामग्री का सुयश बांचा जा सकता है। इसकी सब ओर अपनी अनुपम ओळखाण बनी है। शायद ही किसी प्रांत में ऐसा सुललाम पत्र प्रकाशित होता हो।

अभी आजाद हुए को काफी समय नहीं हुआ है तो बहुत कुछ होने का सिलसिला समाप्त भी नहीं हुआ है। कई सारी चुनौतियां अपनी स्वयं की, अंदर की और बाहर की भी मुंह बांये निरन्तर घोष दे रही हैं। जो कलाएं हमारे देखते-देखते मरी-अधमरी-सी हो गईं उनके अस्तित्व को बचाना है। टेलीविजन के विजन द्वारा लोककलाओं की पंगुता को रोकना है। सिनेमा के नाम दिखाये जा रहे पर्दे की विद्रूपता को ताजा और स्वच्छ दर्पण देना है। कुकुरमुत्तों की तरह पनप रही जयचंदों की खरपतवार को खड्ग दिखानी है और हरिचंद के सांचे मूल्यों तथा हंसों के पारदर्शी मोतियों को मुलकाना है। यह समय निष्कर्ष का नहीं, लगातार उत्कर्ष का है।

मेरा यह सौभाग्य कहिये कि अहोभाग्य, भारतीय लोककला मण्डल में पग-डग भरते ही मुझे वहां के कण-कण ने लोककला की रसवंती रज से रजत रतन कर दिया। देवीलाल सामरजी ने मेरी उंगली ही नहीं पकड़ी, आंख का एक-एक भांपन खोल उजाले का आलोक दिया। सब कुछ, लोककला के नाम पर पूरे राजस्थान का प्रतिनिधित्व करते कलामण्डल ने पहलीबार जो कुछ शिविर, समारोह, रंजन-अनुरंजनकारी मेले, संगोष्ठी, उत्सव, समारोह, दर्शन-प्रदर्शन आयोजित किये उनके साथ मुझे जोड़ते अग्रिम योजक-संयोजक रखा और मेरे अनुभव-अध्ययन को आम्रफल देते मुझे लोककला का आदमी ही बना दिया।

सच तो यह है कि सन् 1958 से शुरू हुई मेरी यह यात्रा इस लोक के साथ तो ब्लोक होने वाली नहीं है। जो कुछ इस लोक में मैं गुन-धुन पाया उसकी धुनक की यदि किंचित मात्र भी कोई आहट ले पायेगा तो मेरी शताधिक पुस्तकें बोल देती साख भर सकेंगी। किमधिकम।

कांटेदार बैंगन सा नया वर्ष

कांटेदार बैंगन सा
नया वर्ष
तकिये के नीचे लेकर सोता हूं।
इससे मुझे शांति मिलती है
और वक्त जरूरत की
मुसीबत से भी
बचना हो जाता है।
बैंगन बलिष्ट होता है
ध्यान से देखने से
कई रंगों का इष्ट होता है।
वैसे बैंगन को देख
मुसीबत आयेगी भी क्यों
बैंगन कोई गन तो है नहीं
जिसके चलाने के लिए
लाइसेंस हो
और अप्टूडेंट सेंस हो।
कांटा गुलाब का भी होता है
पर वह मेरे काम का नहीं
उसकी खुशबू से मैं
खुश नहीं रह सकता
खुश रहने के लिए
उसको पंपोलना
मेरी आदत में नहीं।
ऐसे कैसे आ जाता है नया वर्ष
घूंघट में कणकोले की तरह।
पुराना कहां चला जाता है
जूतियों में डाले तेल की तरह।
ऐसे ही तो स्वागत किया था
तुमने नये वर्ष का।
नये वर्ष में
जैसे देवरे में नयी मूर्ति
और पुरानी पटकदी जाती है
उसके पीछे
(उतरी हिंगाण मंदर पाछै)।
नया-पुराना और पुराना-नया
यह क्या रेला है
अरे यही तो
चलाचली का खेला है।
मैं उसको विदाई देना चाहता था
सम्मानजनक समारोह कर
लेकिन तुम कितने निष्ठुर निकले
उसकी नेमप्लेट ही गायब करदी
और एक बड़ा सा
ताला जडकर
लोक कर दिया कमरे को।
पूरे वर्ष भर
जिसे अपनी पलकों में
बिठाये रखा
वे पलकें ही बदल दी तुमने।
खेत की पाल पर खेजड़ी के नीचे
खों-खों करती वह डोकरी
किसको बोल रही थी
पुराना जब अर्थ खो देता है
व्यर्थ हो जाता है।
वह हेकड़ी में आगया था
कड़ी से कड़ी जोडना भूल बैठा
सुग्गा किसी का सगा नहीं होता।
मकड़ी के जाले की क्या बिसात
मगर वह भी
यादों के झरोखे
बंद किये देता है
सुबक-सुबक रोने के लिए
या तो या फिर
आगे की सुध ढोने के लिए।
नन्ही सी ठीकरी भी
टींच देती है
कभी-कभी
बड़े पाते को।
तुम तो फिर भी
पूरा वर्ष जीते हो
वह तो प्रतिदिन ही
उदय और अस्त के
भंवरजाल में
नट की तरह
डोले फिरता है।
तुमने ठीक कहा-
जो रज होता है वही सूरज होता है,
जो सूरज होता है वही रज होता है।

- डॉ.महेन्द्र भानावत

चंवरी के धुंए से जीवनान्ध हुई चन्दरी बुआ

अतीत की याद और स्मरण का अर्घ्य

डॉ.महेन्द्र भानावत

साठ से भी अधिक वर्ष हुए, अपने गांव कानोड़ की दास्तां मुझे आज भी चन्दरी बुआ की स्मृति से मुक्त नहीं करती है। अब भी बुआ के जीवन को अपने में जीकर बुआ के दुख का हिस्सा बनता हूं। बुआ, जहां आज तेरापंथियों का नोहरा है, वहां रहती थी। अपनी जमीन नोहरा निर्माण के लिए देकर उसने अपनी दुखी जिन्दगी में सुख का छोटा सा छींटा लिया था। फिर मेरे घर के ओवरे में वह रहने लगी। समाज उसका किराया दो रूपया माहवार भी बमुश्किल दे पाता था।

विधवाओं में दो माऊ - बेरा माऊ और हेंका माऊ। बेरा माऊ सफां बेहरे थे। दस वर्ष पति का सुख भोगा और रंडवा गये। हेंका माऊ की कमर झुकी हुई और दोनों पांवों की छह-छह अंगुलियां। दो मासी में एक गब्बू मासी जब देखो तब ही घूंघट में मिलती। घर में अकेली होने पर भी कभी मुंह नहीं उघाड़ा। डेलू मासी का नानपणा ऐसा कि तीन बच्चों के लालन-पालन के लाले पड़ गये। जाड़ी मामी का मोटा डील और महा आलसी। पानी भी कोई लाकर पिलाए नहीं तो प्यासी मरे। बातों की लपारसी। खुद तो कुछ करे नहीं, दूसरों को भी बातों में लगा दे कि चूल्हे पर रखा दूध ही नहीं, तपेली तक काली कलूटी हो जाय।

धापूड़ी के आकास्ये पर ऐसी एक दर्जन तपेलियां धूल खाती मिलीं। दो बुआ में भूरी बुआ की किस्मत देखो, बिचारी के तेरह टाबर हुए मगर एक भी नहीं बचा। समझेबुझे ने बताया कि बुआ की पीठ के नीचे संपणी उभरी थी जिसने सब का भख ले लिया। चंदरी बुआ का भाग तो इन सबसे खोटा रहा जो चंवरी का धुआं भी नहीं ले पाई और रंडवा गई।

डूंगाबा के लम्बी सफेद दाढ़ी। उनके घर के ताणिये वाले किंवाड़ से भीतर का सबकुछ दिखाई देता। उनके एक अबलकी रंग का घोड़ा था जो जब तक रहा, फोड़ा देता रहा। एक बार एक वेरबला (बिज्जु) उनके परींडे में जा घुसा जो बड़ी मशक्कत के बाद निकला। जीत्याबा छोटी थड़ी के सीधेसादे मनख थे। न अरी में न बरी में। सिर पर बालों के तीन पट्टे रखने वाले वे बा बड़े शकुनी थे। उनके शकुन लेने कोई न कोई आता रहता।

एक गागूबा थे जो मेरे घर के सामने वाली मेड़ी में रहते थे। उनकी एक आंख में फूला था। वे गेंडे के मूठ वाली करवरीदार लकड़ी के सहारे चलते थे। उनके चरकली नाम की एक लडकी थी जिसके डूंटी (नाभि) की जगह मोटा डूंटा था। वह भींत चाटती और कई बार मेड़ी की दीवाल के लेवड़े (मिट्टी की परत) उतार खाती रहती।

सात विधवाएं तो मेरी पिरोल में ही रहतीं। मेरे घर के सामने बेरा माऊ के साथ उनकी मोट्यार बहू रहती जो कम उम्र में रंडवा गई थी। हम उन्हें काकी कहते। दोनों सास-बहू कातने-पीसने की मजूरी कर पेट पालती। उनके पास सोरमी जीजां की मां रहती। उन्हें हम मोटा काकी कहते। वह भी ओछी उम्र में रंडवा गई थी। हमने काका को नहीं देखा। कोने पर मांगू की मोटी बाई रहती। वो कटोरी में पानी लेकर उसमें करवरी वींटी डूबो-डूबो आंख का घोखा निकालने में प्रवीण थी। डेलू मासी मेरी मां थी। सब छोटे-मोटे की जबान पर उसका डेलू मासी नाम सुन मुझे अच्छा लगता और कभी कभार मैं भी डेलू मासी कहकर खुश होता। कभी-कभी डूंगाबा की बहिन आ जाती। उसे हम चुन्नी बुआ कहते। पास के डूंगले में वह परणाई गई थी। एकबार तो मां वहां भी उनके घर मुझे मिलाने ले गई थी।

मां को हम 'बाई' कहते और बड़ी बहिन को 'जीजां।' डूंगला हमारी मासी का घर था। उसका घर भरातरा। पांच तो एक जैसे खाते-पीते, दिखते-दिखाते उनके जाये थे। सबके गांवड़ा, यानी पास के गांवों में वजण, लेन-देन। सबके पास ऊंट। खूब कमाते और एक से एक बढ़-चढकर रंगदार रौबदार मस्ती भरे मन वाले। मूंछों पर ताव देते, अपनी मरोड़ के, मसखरी बिखेरते स्वभाव वाले। हम मां के साथ वहां महीना-महीना रहते। खूब खाते-पीते। सब हमें अछन-अछन रखते। मेरे बड़े भाई डॉ. नरेन्द्र जिन्हें 'दादाभाई' कहते, के विवाह में पांचों भाई ने अपने ऊंटों के साथ विवाह का जो रंग जमाया और सजेधजे रूप में वींद गोठ के बाद पूरे गांव में जो सवारी निकाली, वैसी आज तक नहीं देखी गई। सब कहने लग गये कि सगे भाइयों से भी वधोतर, मासी-बेटे भाइयों ने मिलकर नानपणे के दुख को हजार गुने सुख से रतन-जतन कर दिया। कभी-कभी मां मुझे अपनी नानी के घर ले जाती। वह बारले सेर रहती थी। वह छोटी थड़ी की झुकी हुई कमर लिए टगर-टगर चाल चलती। उसके दो ओवरे थे। उनके बाहर एक मोटा कोठा था जिसमें दूध-दही-घी की जावणियां रहतीं। तीन गायें थीं। जब वे ब्याहतीं तब उस दूध की वो बरी जमाती, दिन भर हम उसी का भोजन करते। मामी अंधी थी। कहते हैं मामा कच्ची उम्र में ही चल बसे थे। चार सगी बुआ थी मेरे। तीन को मैं नहीं देख पाया। चौथी का नाम भूरी था। हम उन्हें भूरी बुआ कहते। जब भी मिलता, सोचता इनका रंग भूरा नहीं होने पर भी इन्हें भूरी क्यों कहते हैं। किसी से पूछने की हिम्मत नहीं हुई पर जब मां मुझे पास के भूराबा की दुकान से सुई, धागा, चारोली, पूरबी दाणा, मीठा रंग, सिंदूर, सुपारी जैसी चीजें लाने को कहतीं तब जाना कि भूरा-भूरी नाम होता है। मुझे इन सबमें चंदरी बुआ की स्मृति ही ताजगी दिए है। चंदरी बुआ का तन वैधव्य के अभिशाप जैसा ही कालिमा लिए था। काला ओढना, काला घाघरा और लम्बी बाहों वाली काली कांचली। पति की मृत्यु का सदमा उसे सहा नहीं गया। हर पल उसने आंसू का ही जीवन जिया। इतने आंसू के कारण उसकी आंखें सूखकर अंधत्व को प्राप्त हो गई। उसकी पलकों के बीच नदी के दोनों किनारों की तरह मोटे धागे जैसे जाले का जड़ाव इस कदर आवेष्ठित था जैसे जेल की शिकंजों में किसी शातिर कैदी को बंद कर रखा हो। वे पलकें कभी खुली नहीं। प्रकाश पर अंधेरे का ग्रहण तो मैंने अनेक बार देखा पर अंधेरे पर घने अंधेरे के घोर वैधव्य का ग्रहण यहीं देखा।

चंदरी बुआ उस प्रोल में नीचे ओवरे में रहती। ओवरे में कोई रोशनदान नहीं। कोई खिडकी नहीं। आल औलाद, भाई, गरासिया, सगे समधी भी नहीं। हांव अकेली चंदरी बुआ उस ओवरे के मोटी लकड़ी के डामरपुते किंवाड़ की सांकल भी बंद किये रखती।

कई बार फूंकाफूंकी करने पर भी चूल्हा नहीं जलता। गीले कंडों को आग नहीं पकड़ पाती सो मसर-मसर धुआं निकलता जो आखे ओवरे को धुंवास्या कर देता। चंदरी बुआ घबराती। दड़-दड़ आंसुड़े बहाती। अपने फूटे भाग्य को लेकर फफक पड़ती। वह दो चंदक्ये बनाती, छोटी कटोरीनुमा, हथेली में आने जैसे। कभी वे हांव कच्चे रह जाते तो कभी अधिक पकाई पाकर काले-पीले पड़ जाते। वह प्रोल कभी पूरी गवाड़ी जैसी आबाद रही। बहीवाचक कभीकभाक आता तो पीढियों की पोथी बांच उस असरदार आबाद रही प्रोल का जगमग बखान करता।

मरियल चूही सी चंदरी बुआ दिन को कभीकभाक बाहर निकलती और किंवाड़ के पास ही देहरी का टेका लेकर बैठ जाती। किंवाड़ को कट्ठा बंद कर नीचे वाली सांकल के ताला लगा देती। ताला कोई साधारण नहीं, दरौली का बना दस्त का ताला था। पौन फीट के करीब लम्बी तो उसकी कूंची ही थी। वह बार-बार कभी हिलाकर तो कभी खींचकर उस ताले को देखती रहती कि कहीं खुला तो नहीं रह गया। अकेली रहती हुई भी बुआ कभी अकेली नहीं रहती। वह हर समय अपने से कुछ कहती, सुनाती, बतियाती रहती। लगता वह अपने साथ पिछले कई जन्मों का बोझ ढोये है।

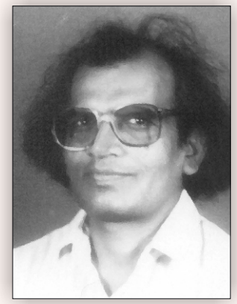

एक दिन मैं चुपचाप उसके पास ऐसे जा पहुंचा जैसे हवा को भी पता न लगे पर बुआ भांप गई कि कोई आ बैठा है। बोली- 'कौन'' छोटे नारियल की काचली सा उसका पोपलपापल मुंह देख मेरी हंसी फूट पड़ी। झेंप मिटाते बोला- 'बुआ, आपने कैसे जाना कि कोई बैठा है?' वह बोली- 'भीतर की आंखें बता देती हैं। सूरदास के अन्तर चक्षु खुले हुए थे सो उन्होंने जैसा जाना, कोई क्या जान पाएगा।'

मैं यह सुन अवाक् रह गया। पूछ बैठा- 'तो क्या आपको भी यह संसार दिखाई दे रहा है?' उसने बताया-'यह तो नहीं पर पिछले जन्म को तो देख ही रही हूं। जो कर्म किये थे उन्हीं का तो फल भोग रही हूं।' 'सो कैसे?' मैं पूछ बैठा। बुआ ने कहना शुरू किया- 'मेरी एक पक्की सहेली थी, हम उम्र, हम शक्ल। हम साथ-साथ रहतीं। एक दिन एक अड़भोपा आया। धन्तूरे की धुन पर उसने एक भजन सुनाया- 'करम गत टारत नांही टरै।' हम उससे अपनी गत पूछती-पूछती आपस में उलझ पड़ीं। इस उलझन भरे रोष में सूरदास ने जैसे अपनी आंखें फोड़ीं वैसे ही मैंने उसकी आंखें फोड़ डालीं। वह अच्छे संस्कार वाली थी सो उसने किसी तीसरे कान तक इस बात की भनक नहीं पडने दी। 'फिर क्या हुआ?' मैंने पूछा। बोली- 'अखन कुंवारी रह उसने अपना जीवन बड़े दोरम में काटा।' 'फिर?' मैं आगे जानने को आतुर था। बुआ बोली- 'फिर क्या होना था। होना तो इस जनम में मेरा लिखा था सो चंवरी का कलंक लगा और सुख का तिनका ही नहीं देखा।' चंदरी बुआ के ओवरे में काले किंवाड़ का भंडारिया था। उसमें रखे भरतिये में चांदी के चित्तौड़ी रूपये थे। बुआ उन्हें बार-बार गिना करती। गिनने की खनक कई बार मैंने भी सुनी। वे सिक्के ही उसकी मूल पूंजी थे। अपने दुख, दोरम तथा रंडापे को काटने के लिए चंदरी बुआ के पास अंधेरा, आंसू एवं अकेलेपन के साथ वे ढेर सारी कहानियां, गीत तथा गाळें थीं जो उसे पारंपरिक लोक से मिली थीं। ऐसी दशामाता की, काती नहाने की, थापानुष्ठानों की कहानियों का वह भंडार लिए थी। इन कथा-गीतों को वह बड़ी मधुराई से गाती। सोनाबाई रूपाबाई की गीत-कथा वाली कहानी सुनने तो प्रति रात्रि ही हम उसे घेरे रहते। वह लेरके दे-देकर गाती-

'उतरो-उतरो ए म्हारी सोन्याबाई बेन्या,
रूपाबाई बेन्या,
ढोल नगाड़ा वाजीरया,
पनवा री वेरां टली रई।'
कहानी है-

सोनाबाई-रूपाबाई दो बहिनें थीं। सोनाबाई के सोने जैसे और रूपाबाई के रूपे अर्थात् चांदी जैसे बाल थे। एक दिन दोनों नदी पर नहाने गई। दोनों के बालों के गुच्छे नदी की धारा के साथ बहते चले। आगे उनका भाई नहा रहा था। बालों के गुच्छे देख वह बड़ा चकित हुआ और मन ही मन कल्पना कर बैठा, ऐसे बालों वाली कन्या कितनी सुन्दर और भाग्यवान होगी। वह घर आया और अपनी मां से उन बालों वाली कन्या से विवाह करने की जिद् कर बैठा। उसे ज्ञात नहीं था कि वैसे बालों वाली एक नहीं, दो कन्याएं उसी की बहिनें हैं।

मां के लिए बड़ा संकट हो गया। बहिनों को जब इस बात का पता चला तो वे अपने आंगन में लगे चंदन के वृक्ष पर जा बैठीं और उससे कहने लगीं कि भाई जिद् पर अड़ा हुआ है पर हमारे लिए यह असहनीय दुष्कृत्य है। अच्छा हो, कोई चमत्कार हो। तुम आकाश की ओर बढ़ते जाओ और इधर धरती फट पड़े ताकि हम दोनों उसमें समा जायें।

इस सारी स्थिति से नितांत अनजान भाई को जब पता चला कि वे बालिकाएं दो हैं और वृक्ष पर बैठी हुई हैं तो वह उनसे नीचे आने की अरदास करने लगा। भाई और बहिनों का संवाद जिन कारूणिक स्थितियों की अभिव्यक्ति देता है उसे सुन भाई के अबोधपन किंतु बहिनों की भली समझ पर कोई क्या समझेगा!

वृक्ष पर बैठी अपनी दोनों बहिनों से भाई कह रहा है- ? सोनाबाई बहन! रूपाबाई बहन! वृक्ष से नीचे उतरो। ढोल, नगाड़े बज रहे हैं। विवाह का वक्त टला जा रहा है।' दोनों बहिनें जवाब देती हैं -

'आगे तो म्हां वीरा सा केती, / अबे सायबजी कयोएनुं जाय, / वध-वध रे चंदण रा रूंख, / वध्यांई जाय, /धरती फाटे तो म्हें धसां।'

अर्थात् अब तक हम जिसे वीरा अर्थात् भाई कहकर बुलाती थीं, अब उसे सायबजी अर्थात् पतिदेव नहीं कहा जाता। ए चंदन के वृक्ष! तुम ऊपर आकाश में बढ़ो और बढ़ते ही जाओ। यह धरती फट जाय तो हम उसमें अपने प्राण न्यौछावर कर दें। इसी प्रकार मां को सास और बावल को श्वसुर कैसे कहें जैसी गीत-पंक्तियों का रूदन तीव्रतर हो उठता है।

बुआ का ढका मुंह उसकी करूणाभरी गीतमय दास्तान से छलक मारता देख हम बच्चे भी अपने आंसू नहीं रोक पाते। हममें से कुछ तो अपनी सुबक में धारदार हो आस्तीनों से आंखें पौंछने लगते। बुआ यह सब भांप जाती तब अचानक वह अपनी सहज हंसी ऐसी बिखेरती जैसे किसी नवजात शिशु को कोई विधाता माता हंसा रही है।

मेरा वह गांव कानोड़ अभी भी है मगर वैसा नहीं रहा। प्रोल भी वैसी नहीं रही। वे नाम और वे बा-बुआ भी नहीं रहे। तब भी उस खंडहर बनी पिरोल में अपनी याददाश्तों का अर्घ्य चढ़ाने जाता हूं। अपने गांव और उस पिरोल की ममत्व भरी महकदार माटी से अपने आत्म-चैतन्य को सुगंधा बनाता हूं। उस अतीत को वर्तमान में सरजीवित कराता हूं। जननी और जन्मभूमि का कर्ज उतारता हूं। तब के आंसुओं से अब के आंसुओं की मिलनी कराता हूं। कितना ही समझूं-समझाऊं अपना मन और हिया तो धार-धार हुए बिना नहीं रहता मगर लेखनी को किस विध समझाऊं जो उस अतीत को याद करने की अरड़ पकड़े उदास धुंधलके में खो जाना चाहती है।

डॉ. महेन्द्र भानावत एक 'फिनोमिना' ही हैं

नंद चतुर्वेदी

डॉ. महेन्द्र भानावत को लिखने की ताकत कहां से मिलती है? किसी भी लेखक को पढ़ते समय मेरे मन में यही प्रश्न उठता है। फिर उस लेखक की चाहे एक पुस्तक हो या पचास।

इस तलाश के बीच मैंने यह संतोष प्राप्त किया है कि डॉ. महेन्द्र भानावत किसी घोंचू लेखक की तरह जिंदगी को दफना कर, उसके ताप, उसकी गर्मी से बचते नहीं रहे हैं बल्कि एक उबलते कड़ाह में हाथ डालकर उन्होंने अपनी अंगुलियां जलने दी हैं। हर लेखक को इसी तरह जिंदगी के नजदीक जाना पड़ता है और इम्तहान देना पड़ता है। इसका मतलब यह नहीं है कि हम असली जिंदगी से लेखकीय जिंदगी को अलग नहीं कर सकते। कम से कम डॉ. महेन्द्र भानावत ने यह नहीं किया है। निसंदेह महेन्द्र पूरी तरह लोक के आदमी हैं। पूरी तरह भूमि में फैले हुए, लोगों में मिले हुए, इसलिए देवी-देवताओं, भूत-प्रेत की कथाओं, जन्म-जन्मान्तर के प्रसंगों को वे अपनी जिंदगी का मनोरमणीय पक्ष ही नहीं, आस्थाओं का पक्ष बनाए रहते हैं, तब भी जबकि आधुनिक जिंदगी उनके सामने है और बहुत से अनुभव रूढियों और अंधविश्वासों की श्रेणियों में शामिल कर दिये जाते हैं।

डॉ. महेन्द्र भानावत को लोकजीवन और उसकी सहस्त्रों छवियां देखने के लिए सहस्त्रों आंखें मिली हैं। इन्हीं आंखों से वे हजारों वर्षों के वृक्ष, हजारों वर्षों के संत-महात्मा, हजारों वर्षों के आर-पार का समय, हजारों वर्षों के मांडणों, लोकनाटकों के विदूषक, स्वांग, सिंदूर पीते, दहकते अंगारों पर नंगे पैर चलते, अपनी पीठ को लगातार लोहे की सांकलों से पीटते, किसी पेड़ की हरी नरम डाल से रोगी को दुख मुक्त करते भोपे देखते हैं और उस रहस्य को अपने अनुसंधान, अपनी रचना से पुनर्व्याख्यायित करते हैं। देखने की बात यह है कि काल या बौद्धिकता का परिदृश्य महेन्द्र के लिए कोई हिचक नहीं होता, जो आधुनिकों के लिए है। आधुनिकता का एक नजरिया है जिसका विरोध करते हुए एक बहस के बीचोंबीच जे. स्वामीनाथन ने मुझे रोकते हुए कहा था- 'डॉक्टर भी तो भोपा ही है, शरीर के संबंध में वह कितना सा जानता है।' डॉ. महेन्द्र स्वामीनाथन से बहुत अधिक भोले और सहज हैं और उनके विश्वासों का संसार ज्यादा जटिल नहीं है। डॉ. भानावत के विश्वासों के साथ मेरा तालमेल नहीं बैठता तब भी जब पुराना साहित्य पढ़ता हूं तो अचरज में पड़ जाता हूं कि पुरोधा रचनाकारों ने रूप और काल को अतिक्रमण करने में कितने कौशल से काम लिया है। शायद एक दृष्टि उन्हें लोकसाहित्य से मिली हो। लोकसाहित्य में काल कोई गणना या महत्व का विषय नहीं है। जन्म और मृत्यु एक संक्रमण की स्थिति में चलते रहते हैं। यहां तक कि वे आपके वश में हो जाते हैं और शरीर तथा आत्मा अनेक संताप सहन करती है। अभिजात साहित्य के कवि कालिदास दुष्यंत के शाप और विस्मृति को अपने नाटक का कैसा अनुकूल पक्ष बनाते हैं। दर्शकों के लिए शाप या वरदान सत्य के रूप नहीं होते। वे कला-रूप (आर्ट फार्म) होते हैं। सत्य की जटिलता को कुछ सरल और मनोरंजकता देते हैं। डॉ. महेन्द्र अपनी शोध में, रचना और अभिव्यक्तियों में इन कला-रूपों की आंतरिक शक्ति को समझने, देखने, बचाने की लगातार कोशिश करते हैं। जिस कोशिश में देवी-देवता, नदी, पर्वत, वृक्ष, भूत-प्रेत की योनियां, जन्मांतरवाद की आस्थाएं और कार्य-कारण की श्रृंखला से व्याख्यायित न होने वाले अनेक विश्वास शामिल होते हैं। दरअसल यह ऊल-जलूल विश्वास उस काल, उस रचना और कलारूपों की ताकत होता है।

नंद चतुर्वेदी के साथ भानावतजी।

एक इनसाइक्लोपिडिया है महेन्द्र भानावत

क़मर मेवाड़ी

कुछ समय पहले हल्की-हल्की बारिश हुई थी। हवा में खुनक थी। मौसम खुशगवार हो गया था और धरती की सौंधी-सौंधी खूशबू हवाओं में तैर रही थी। ऐसे दिलफरेब माहौल में मैंने एक बड़े फाटक से प्रवेश कर उस भवन के ऊपरी कमरे में कदम रखा।

कमरा लम्बा-चौड़ा था और उसका ठाठ भी निराला था। एक बड़ी-सी मेज़ पर किताबों का ढेर लगा था। दो-चार किताबें इधर-उधर पड़ी थी। सामने की कुर्सी पर एक दरमियाना क़द का सज्जन बैठा था। कमरे की सजावट किसी बड़े अधिकारी के कमरे का आभास करा रही थी।

मैंने नमस्ते कर अपना नाम बताया तो उनके चेहरे पर एक साथ कई कमल खिल गये। अपनी कुर्सी से उठे, मुझे गले लगाया और जहां आगन्तुकों के बैठने के लिए कुर्सियां रखी थी वहीं मेरे पास बैठ गये और बोले, मुझे कई दिनों से आपसे मिलने की इच्छा थी। आज पूरी हो गयी। उन्होंने सेवक से चाय के लिये कहा। चाय पीने के बाद साहित्य, कला, संस्कृति और समाज पर वे बोलते रहे। मेरा ज्ञानवर्धन होता रहा। दो घण्टे का समय इस तरह गुज़र गया कि पता भी नहीं चला। मुझे लगा यह व्यक्ति ज्ञान का भंडार है। यह व्यक्ति और कोई नहीं, राष्ट्रीय स्तर पर कोलकाता मर्मज्ञ की पहचान बना चुके डॉ.महेन्द्र भानावत थे। पचास साल पहले इन शख्स की शख्सियत का जो प्रभाव मुझ पर पड़ा था, यह आज भी जस का तस कायम है। तब से लेकर आज तक निरंतर डॉ.महेन्द्र भानावत से संपर्क बना हुआ है और समय की लम्बाई ने इस संपर्क को आत्मीयता के साथ-साथ एक स्थायित्व भी प्रदान किया है। हमारी मित्रता, भाईचारा और इन्सानियत की एक जिन्दा मिसाल है। साहित्य के सवालों पर बेबाक विचार प्रकट करने की मित्रता है। यह नहीं कि किसी को लंगी लगाकर पीछे छोड़ देना है या अखाड़े में पटखनी देनी है। ऐसा नहीं है कि हमारे विचारों में हमेशा सहमति या एकरूपता ही रही हो। कभी-कभी किसी गंभीर मुद्दे पर मतभेद भी रहा है। लेकिन मनभेद कभी नहीं रहा। ज्वार-भाटा की तरह हमारे विचारों में उतार-चढ़ाव भी आये हैं, पर किसी ग्रंथी ने कभी जन्म नहीं लिया।

मेरे अन्तर में जो साहित्य के प्रति जिज्ञासा है जो प्यास है उसे हम आपस में मिल-बैठ कर शांत करने का प्रयास करते हैं। हमसे तात्पर्य है हिन्दी के वरिष्ठतम कवि और चिंतक प्रो.नंद चतुर्वेदी, डॉ.महेन्द्र भानावत और आपसे मुखातिब यह नाचीज़ क़मर मेवाड़ी।

मेरी और डॉ.महेन्द्र भानावत की बातचीत में नंद बाबू हमेशा मौजूद रहते

श्री नंद चतुर्वेदी और कमर मेवाड़ी के साथ भानावतजी।

उस शक्ति या उस रोमांस को भुलाकर उस कला-रूप के सौंदर्य की व्याख्या करना बेमतलब है। उसी रोमांस को बचाकर रखने के लिए, हो सके उतना उसे आधुनिक अभिप्रायों से अलग देखने-समझने की इच्छा में महेन्द्र मेलों में, किलों की ध्वस्त इमारतों में, अंधेरे एकांत महलों में, अड़भोपों के देवरों में, महात्मा और संतों के सत्संगों में, मंदिर-मस्जिदों के इर्दगिर्द जाते हैं और उन सबसे संवाद करते हैं जो वृद्ध तो हो गए हैं लेकिन आस्थाहीन नहीं।

इन कला-रूपों को वे अपनी और उनकी आंख से देखते हैं। उनका उपकरण, उनकी साक्षी 'श्रुति' है, लोग हैं, संवाद हैं। लोग जिनकी स्मृति ढीली-ढाली है लेकिन पूर्वग्रह दूषित नहीं है और जो कुछ कल्पना, कुछ बतरस, कुछ आख्यान, कुछ गप्प, कुछ रचनाशीलता को लेकर थोड़ा पीछे की ओर देखते आगे बढ़जाते हैं। इन साक्षियों को पुष्ट और प्रमाणित तथा लोक-परंपरा के चिंतन को अधिक समृद्ध करने के लिए महेन्द्र अपनी स्थापनाएं भी करते हैं। देखने की बात यह है कि लोकसाहित्य किसी ठहरे हुए ताल की तरह नहीं है। एक बीज में से जैसे कई अंकूर फूटते हैं वैसे ही लोकसाहित्य के एक रचना रूप को, एक पद को, एक कथा को कोई भी अतिथि कवि, कथाकार, कीर्तनकार कोई पंक्ति, कोई घटना, कोई सुर-ताल देकर आगे बढ़ा देता है। इस तरह एक सनातन सत्य फिर से नये कला-रूप में व्यक्त होता है।

यह तथ्य रेखांकित किया जाना चाहिए कि महेन्द्र के लेखन में जो प्रवाह और भाषा का सहज रूप है और कहीं-कहीं वही भाषा जो एक उछलती हुई लडकी की तरह चलती दिखती है, वह सब लोक-साहित्य की छविमान ऊर्जा है। उन्होंने शायद लोक-साहित्य से ही यह सीखा है कि लेखन किसी वैचारिकी की निष्कर्षात्मक या तार्किक परिणति नहीं है। इसीलिए उनकी कविताएं (कोई-कोई औरत), उनके साक्षात्कार, उनकी संपादित पत्र-पत्रिकाएं, उनके आयोजन, भाषण और जीवन-शैली, संकल्प और आस्थाएं आधुनिक चाहे न हों लेकिन उस जिंदगी का हिस्सा हैं जिसकी याद हमें उस खुशनुमा मैदान की तरह आती है जहां बहुत सी धूप, पशु-पक्षी, हमारी पहचानी वनस्पतियां और तीर्थों को जाते हुए लोग जमा हैं। लोकजीवन और साहित्य पर दुतरफे हमले जारी हैं। एक तरफ अज्ञात और आत्ममुग्धता के और दूसरी तरफ आधुनिकता के। डॉ. भानावत जैसे लेखक लोक-साहित्य को भारतीय साहित्य का एक अविभाज्य अंग बनाने की कोशिश में लगे रहेंगे जिससे वह 'अजूबा' बन कर न रह जाये, जिसका कुछ डर दिन-प्रति-दिन गहरा होता जा रहा है।

महेन्द्र की ही नहीं, हमारी सबकी साहित्यिक यात्रा कठिन ही होती जा रही है क्योंकि उसे गंभीरता से पढने वाले कम होते जा रहे हैं। तब भी इन विषम परिस्थितियों में डॉ. भानावत हमारे बीच एक 'फिनोमिना' ही हैं।

हैं और हम यह कामना करते हैं कि नंद बाबू का सानिध्य हमें सदैव प्राप्त होता रहे। महेन्द्र भानावत एक हँसमुख और ज़िन्दादिल इन्सान हैं। उनसे मिलकर एक नई ऊर्जा प्राप्त होती है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैं उदयपुर गया और उनसे बगैऱ मिले ही कांकरोली लौट आया। कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है कि मैं सिर्फ उनसे मिलने के लिए ही उदयपुर जा पहुँचा और दो-तीन घण्टे मिलने के बाद वापस लौट आया।

महेन्द्र भानावत जैसे मित्र पर मुझे गर्व है कि मैं उनका दोस्त हूँ आज इस अर्थ केन्द्रित समय में किसे फुर्सत है कि बैठकर आपके साथ गप्पबाजी करें। वह भी ऐसा व्यक्ति जिसका आज तक सात दर्जन से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका हो तथा जिसे लेखन से आज भी फुर्सत न हो।

महेन्द्र भानावत को देखकर आश्चर्य होता है और कुछ-कुछ रश्क भी कि वे आज भी नियमित लेखन कार्य में जुटे रहते हैं। लगता है वे जल्दी ही अपनी पुस्तकों का शतक पूरा कर लेंगे।

उन्होंने साहित्य की अलग-अलग विधाओं में पूरी ईमानदारी के साथ सृजन किया है किन्तु मुख्यतया लोक साहित्य, लोक संस्कृति तथा लोककला के सिद्धहस्त रचनाकार हैं और संपूर्ण देश में लोक संस्कृतिविज्ञ के रूप में विख्यात हैं। मुझे उनकी सभी पुस्तकें पढ़ने का अवसर तो नहीं मिला लेकिन- ''लोक नाट्य : परम्परा और प्रवृत्तियाँ'', ''जिन्हें मैं जानता हूँ'', ''कोई कोई औरत,'' ''लोककलाओं का आजादीकरण'', ''राजस्थान के लोक देवी देवता'', ''शिक्षाप्रद कठपुतली नाटिकाएं'', ''जनजाति जीवन और संस्कृति'' तथा ''भारतीय लोक नाट्य'' आदि पुस्तकें पढ़कर यह महसूस हुआ कि लोक साहित्य के क्षेत्र में जितना काम महेन्द्र भानावत ने किया है उतना शायद किसी और ने नहीं किया।

एक बार महेन्द्र भानावत दो सप्ताह की यात्रा से लौटे तब मिलने पर मैंने उनसे पूछा, 'यात्रा कैसी रही?'

'यात्रा सफल रही।'

'कहाँ-कहाँ जाना हुआ?'

लोक साहित्य विद् श्री वसन्त निरगुणे और भानावत जी।

लोकप्रिय कवि बालकवि बैरागी के साथ भानावतजी।

'पर्वतीय स्थलों में खूब घूमना हुआ। गिरनार भी गया।'

'पर्वतीय स्थलों की यात्रा की कोई खास बात बताएं।'

'कई बातें हैं। पर आप मानेंगे नहीं।'

'क्यों नहीं मानूंगा। आप बताइये। मुझे अच्छा लगेगा।'

'तब सुनिये, में गिरनार पर्वत के शिखर पर था। एक संन्यासी के दर्शन हुए। हट्टा-कट्टा शरीर। त्वचा खिंची हुई। चेहरे पर एक भी झुर्री नहीं। दाढ़ी और सर के बाल सन जैसे सफेद झक्क। वे साधना में लीन थे। जब उन्होंने अपने नेत्र खोले तब मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने प्रसन्न मुद्रा में मुझे आशीर्वाद प्रदान किया। उन संन्यासी महात्मा की आयु पाँच सौ वर्ष थी।' यह सुनते ही मेरे होठों पर मुस्कान फैल गयी।

'मुझे मालूम था आप विश्वास नहीं करेंगे। इसलिए सही उम्र नहीं बताई।'

'सही उम्र क्या है?'

'अब रहने भी दीजिए।'

'बताईये-बताईये भानावत साहब। सही उम्र बताईये।' मैंने जिज्ञासा व्यक्त की। 'संन्यासी जी ने मुझे अपनी आयु पाँच हजार साल बताई थी।' सुनकर मैं चकिन रह गया। पर इस बार मुस्कराया नहीं।

'क्यों आश्चर्य हुआ न?' उन्होंने पूछा।

'नहीं आश्चर्य कैसा। जब संन्यासी जी ने स्वयं बताया है तब सच...।'

'मेरी बात काटते हुए वे बोले।' फिर आप यह बात कैसे मानेंगे।

'कैसी बात।'

'इसी उदयपुर शहर के भूतमहल का नाम तो आपने सुना होगा?'

'हाँ! वही। भूतमहल का इलाका जहाँ प्रसिद्ध रंगकर्मी आर.जेड उस्मान निवास करते थे।' हाँ! वही। इस भूतमहल के विषय में किंवदंती है कि इसे चार राक्षस उड़ाकर ले जा रहे थे। यहाँ आते-आते उन्हें भूख सताने लगी और वे इस महल को यहीं छोड़कर भोजन की तलाश में निकल गये। फिर वापस कभी नहीं लौटे। तब से इस भवन का नाम भूतमहल पड़ गया। आज भी लोग इसे भूतमहल के नाम से ही जानते हैं। यह किस्सा सुनकर मेरी जानकारी में वृद्धि हुई। ऐसे अनेक दिलचस्प संस्मरण महेन्द्र भानावत की 'निर्भय मीरा' और 'अजूबा भारत' नामक पुस्तकों में भरे पड़े हैं।

महेन्द्र भानावत एक इन्साइक्लोपीडिया है। उनके मस्तिष्क के किसी एक कोने में स्मृतियों का खजाना दफ़न है। जहाँ सैकड़ों दास्तानें, किस्से और यादें सुरक्षित हैं। वे जब चाहते हैं किसी एक याद को खजाने से बाहर निकाल लेते हैं, फिर एक नई पुस्तक तैयार हो जाती है।

ऐसे ज्ञान के भंडार महेन्द्र भानावत के लिए ईश्वर से प्रार्थना है कि वे स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें। शतायु हों और निरंतर उनकी कलम चलती रही। स

चांद पोल, कांकरोली (राजसमन्द) राजस्थान
मो.09829161342

साक्षात्कार

मुझे फख्र है कि मैं उदयपुर विश्वविद्यालय का पहला पीएच.डी. छात्र हूँ....

डॉ. महेन्द्र भानावत से हुई माधव नागदा की बातचीत के अंश

"मेरी एक आदत रही है। जब सर्जनात्मकता का उत्स कमजोर पड़ जाता है,भविष्य की कोई योजना नहीं सूझ रही होती है तो कुछ समय के लिए भूत की ओर मुड़ जाता हूँ। अपनी ही रचनाएँ पढ़ता हूँ और सोचता हूँ कि स्वयं से आगे कैसेनिकलूं। या फिर पुराने एल्बम निकाल लेता हूँ। साहित्यकारों के संग बिताये क्षण ताजा करने की कोशिश करता हूँ। इस प्रकार भूत मुझे रिचार्ज करता है और मेरे कदम नये सिरे से आगे बढ़ने लगते हैं।

तीस वर्ष पुराना एक श्वेत-श्याम फोटो मेरे हाथ लगता है। सन १९८५ का। नन्द बाबू (नन्द चतुर्वेदी), प्रकाश आतुर, विष्णुचन्द्र शर्मा, कमर मेवाड़ी, भगवातीलाल व्यास, राजेंद्रप्रसाद सिंह, महेंद्र भानावत, मधुसूदन पाण्ड्या और मैं। अवसर था मेरे प्रथम कहानी संग्रह 'उसका दर्द' का लोकार्पण समारोह जो खादी ग्रामोद्योग, राजनगर(राजसमंद) के सभागार में सम्पन्न हुआ था। पुस्तक प्रकाशित की थी कमर मेवाड़ी जी ने अपने सम्बोधन प्रकाशन कांकरोली से। इस पुस्तक पर राजस्थान साहित्य अकादमी से आर्थिक सहयोग मिला था। उस समय अकादमी अध्यक्ष डॉ.प्रकाश आतुर थे जो युवा रचनाकारों को आगे लाने में विशेषरूप से प्रयत्नशील थे। कमर जी ने मुझसे कहा था कि निश्चिंत रहो, यह आपकी प्रथम कृति है, अच्छे लोगों को बुलायेंगे। ये सभी अच्छे ही नहीं सुप्रतिष्ठ नाम भी थे जिन्होंने अपनी-अपनी पसंदीदा विधाओं में डूबकर काम किया था। मैं इन सबसे लगभग प्रथम बार मिल रहा था। मेरी याद में यह पहला आयोजन था जिसमें मुझे इन नामचीन साहित्यकारों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं मन ही मन पुलकित भी था कि इतने बड़े रचनाधर्मी मेरे कहानी संग्रह के लोकार्पण समारोह में आए हैं। विष्णुचन्द्र शर्मा तो दिल्ली से आए थे। उन्होंने मुझे अकेले में बताया था कि आपकी कहानियाँ मुझे यहाँ तक खींच लायीं हैं। लोकार्पण समारोह की अध्यक्षता डॉ.प्रकाश आतुर ने की थी। मुख्य अतिथि विष्णुचन्द्र शर्मा थे। नन्द बाबू, भगवातीलाल व्यास और महेंद्र भानावत विशिष्ट अतिथि थे। मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया डॉ. महेंद्र भानावत ने। वे विशिष्ट अतिथि ही नहीं अपने व्यक्तित्व से भी विशिष्ट लगे। ठिगना कद, लंबे बाल, आवाज में खम, बातों में दम। 'उसका दर्द' की अधिकतर कहानियाँ ग्रामीण परिवेश की थीं। इसे देखते हुए लगभग सभी स्थानीय साहित्यकार मुझमें प्रेमचंद के दर्शन करने लगे। लेखक ने प्रेमचंद की तरह यह लिखा है, वह लिखा है। इन कहानियों को पढ़कर प्रेमचंद की याद आ जाती है वगैरह, वगैरह। जब महेंद्र भानावत बोलने खड़े हुए तो अपनी खनकदार आवाज में कहने लगे,'यह क्या प्रेमचंद, प्रेमचंद की रट लगा रखी है। प्रेमचंद के समकक्ष ठहराकर हम क्यों एक नए लेखक की प्रगति के तमाम मार्ग अवरुद्ध करने पर तुले हैं। प्रेमचंद प्रेमचंद हैं, माधव नागदा माधव नागदा। हमें इस तरह की तुलनाओं से बचते हुए आज के संदर्भ में इन कहानियों का विश्लेषण करना चाहिए'। ऐसी बेबाक बात वक्ताओं में से अभी तक किसी ने नहीं कही थी। मैं तारीफों के पुल पर अपने पंख पसारकर उड़ान भरने लगा था कि डॉ.महेंद्र भानावत ने मुझे यथार्थ की खुरदरी जमीन पर ला खड़ा कर दिया। यह मेरे लिए बहुत बड़ी सीख थी जो अभी तक प्रकाश-पुंज की तरह काम दे रही है। कभी स्वयं को इतना ऊंचा मत समझो कि और ऊपर उठने की गुंजाइश ही न बचे। नतीजा यह हुआ कि अपनी आलोचना से मैं सदैव कुछ न कुछ सीखता रहा हूँ जबकि प्रशंसा के अतिरेक को हमेशा नजरअंदाज करता हूँ। उनके बारे में यही कहूँगा कि लोककलाविद्, लोकमन, सबके मित्र अनन्य भानावत तुमसों कहीं मिल्यों न कोई अन्य -" माधव नागदा

ऐसे प्रेरक व्यक्तित्व के धनी डॉ.महेन्द्र भानावत जी से उनके सृजन और व्यक्तित्व पक्ष पर समावर्तन के पाठकों के लिए प्रस्तुत है यह साक्षात्कार।

महेन्द्र भानावत : आपने कानोड़ जैसे छोटे से कस्बे से निकलकर न केवल भारतीय लोक कला मण्डल के निदेशक पद को सुशोभित किया बल्कि एक लोककला मर्मज्ञ के रूप में पूरे देश में अपनी पहचान बनायी। समावर्तन के पाठक जानना चाहते हैं कि आपकी रूचि लोककलाओं में कैसे जागृत हुई?

माधव नागदा : लोककलाओं के प्रति मेरी रूचि भारतीय लोककला मण्डल में वहां के संस्थापक देवीलाल सामर से भेंट के दौरान हुई। यह बात सन् 1958 के जून माह की है जब मैं बी.ए. पास कर नौकरी की तलाश में उदयपुर की विविध संस्थाओं के चक्कर लगा रहा था। सामरजी ही थे जिन्होंने मुझे तरजीह दी। बैठने को कुर्सी दी। हालचाल पूछे। परिचय जाना। पूछा क्या करते हो? मैंने कहा, बी.ए. करके आया हूं। नौकरी की तलाश में घूम रहा हूं। यों करने को बचपन से ही कविता कर रहा हूं। उन्होंने मेरी कविता सुनी। प्रशंसा की और कहा, कविता की तो यहां कोई जगह नहीं है पर जब तक अन्यत्र काम न मिले, यहां आया करिये। हमारा काम देखिये,समझिये। एकदिन वे बोले, मेरे दफ्तर के उधर कलाकार रिहर्सल कर रहे हैं। आपको आवाज सुनाई दे रही है? मैंने 'हां' किया। उन्होंने कहा, आप तो कविताएं करते हैं। वो जो धुन सुनाई दे रही है उसको लेकर कोई गीत लिखें। दूसरे ही दिन मैं राजस्थानी में पति-पत्नी के रूठने-मनाने का एक संवाद लिखकर ले गया। गीत का मुखड़ा था-

रूठो न भंवरजी थांनैं प्यारीजी मनावे छै।
म्हांसू नाहीं रूठो, म्हारो जीव घबरावे छै।

बोले, आपकी कल्पनाशक्ति अच्छी है और मुझे जुलाई से नियमित आने की नौकरी दे दी।

आपने अपने शोध कार्य हेतु मेवाड़ अंचल में लोकप्रिय नृत्यनाटिका गवरी को चुना, इसके पीछे कोई विशेष प्रेरक तत्व? जबकि आपने स्नातकोत्तर हिन्दी साहित्य में किया था।

कोई चार-पांच वर्ष का रहा होऊंगा, मुझे पूरे शरीर को कंपकपी देने वाला धूजणी बुखार चढ़ा तब कोई डाक्टर- अस्पताल तो थे नहीं। अडक इलाज करने वालों से भी बुखार नहीं गया तो पिरोल में रहने वाली विधवाओं ने कहा कि इसे रावले में ले जाओ। वहां गवरी नाच रही है सो माताजी ने चाहा तो ठीक हो जाएगा। पिताजी नानपणे में ही गुजर चुके थे सो माताजी बोरे के रेजे वाला जाड़ा पछेवड़ा ओढ़ाकर ले गई। वहां देवी वाहन नारसिंघ बना खेल्या अपनी लपलपाती जीभ निकाले वीरोचित रौद्र रूप दर्शा रहा था। मां ने मुझे बड़े श्रद्धा और आस्था भाव से उसकी टांगों के बीच निकाला। इसे चमत्कार ही कहा जायेगा कि घर आते-आते ही मेरी धूजणी कम होती गई। दो-दो गोदड़े ओढकर भी मेरी धूजणी नहीं मिट रही थी वह यों ही सेंतमेंत में जाती रही और उसके बाद आज तक मुझे किसी बुखार ने नहीं सताया। हो सकता है, अवचेतन में वही गवरी शोध का वरदान बन मेरे लिए साहित्य-रत्न विद्या वारिधि के रूप में फलित हुई। यहां यह भी

उल्लेखनीय है कि 1962 में एम. ए. करने के बाद प्रो. नरोत्तमदास स्वामी ने मुझे मेवाड़ प्रदेश का लोकसाहित्य विषय पर पीएच.डी. करने को कहकर सिनोप्सिस ही तैयार कर दी थी। कमल के फूल पर मोती जैसी अक्षरों में लिखी उनके हाथ की लिखी वह सिनोप्सिस आज भी मैंने बड़े जतन से संभाले हुए है। जयपुर में डॉ. सत्येंद्र ने भी मुझे कहा पर मैं तैयार नहीं हुआ। वहीं डॉ. सरनामसिंह शर्मा 'अरूण' ने भी मुझे मेवाड़ी भाषा पर पीएच. डी. करने को कहा था पर इस विषय में मेरी रूचि नहीं थी। डॉ. प्रकाश 'आतुर' भी तैयार थे पर अंत में डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने मुझे मना लिया लेकिन मैं अपनी रूचि का विषय लेने पर ही अड़ा रहा। उन्होंने मेरा रजिस्ट्रेशन करवा लिया हालांकि सामरजी ने उनसे कहा था कि गवरी में ऐसा लिखने को कुछ नहीं है। परीक्षक डॉ. नगेन्द्र हुए। वे गवरी विषय के, लोकसाहित्य के पक्षधर नहीं थे। उन्होंने तो मौखिकी में कह भी दिया था कि यह विषय तो निबंध का भी नहीं है। मुझे फख है कि मैं उदयपुर विश्वविद्यालय का पहला पीएच. डी. छात्र हूं जिसे 1967 में पीएच. डी. की उपाधि मिली।

गवरी मेवाड़ क्षेत्र के आदिवासियों का नृत्यानुष्ठान है। इस अनुष्ठान का प्रारम्भ कैसे हुआ? क्या इसके पीछे केवल धार्मिक भावना ही रही है या समाजार्थिक कारण भी हैं?

गवरी के मूल में ही क्यों, आदिवासियों की जीवनधर्मिता का आधार ही धार्मिक भावना से पलित पोषित तथा संरक्षित रहा। मैंने इसीलिए गवरी को नृत्यानुष्ठान कहा है। प्रकृति के पराक्रम से, प्रकोप से, या प्रहार से प्रथम पुरूष और बाद का या अब का समष्टि पुरूष भी डरा हुआ ही रहा इसीलिए प्राकृतिक शक्तियों, पराशक्तियों तथा देवी-देवताओं का अस्तित्व स्वीकारा जाने लगा। जहां मनुष्य है वहां समाजधर्मिता तो स्वतः विद्यमान है। गवरी के मूल में आदिदेव महादेव शंकर और गौरादे पार्वती की आराधना, उत्सव का स्तुतिभाव रहा। यह आस्था, श्रद्धा की मंगल भावना आज भी वैसी ही है। गांव की खुशहाली, फसल की बर्बादी, जंगल का मंगल, सुकाल दर्शन, पशु रक्षार्थ देवी गौरज्या से स्वीकृति पाकर गवरी आयोजन का शंखनाद किया जाता है। गवरी से जुड़े आख्यानपरक गाथा-गीत 'भारत' गाये जाते हैं। उनमें सृष्टि का प्रारंभ ही देव-देवी शक्तियों के सहयोग से हुआ। पहले पहल सातवें पाताल से जो वट वृक्ष लाया गया उसकी स्थापना का स्थल भी यही मेवाड़ रहा। हल्दीघाटी के पास खमनौर गांव का बड़ल्या हींदवा क्षेत्र उसी वट-बड़ल्या का बारह बीघा का क्षेत्र अपनी जीवंतता का, फैलाव का आज भी साक्षी बना हुआ है। गवरी-कथा के सूत्र पुराणों में भी मिलते हैं। यह सब बड़ा ही अद्भुत और रहस्यमय खेला है।

क्या गवरी में सामंतवाद के विरूद्ध कोई प्रतिरोधी स्वर भी सुनाई देते हैं?

सामंतवाद तो सदा ही प्रभावी तथा पराक्रमी रहा। सवर्ण जाति के लोग तक सामंतों के विरूद्ध ऊंचा होने की हिम्मत नहीं रखते थे। जब भी कोई बनोली उनके निवास से गुजरती, ताशे बाजे और सब तरह के गाजे बंद हो जाते। महिलाएं मंगल गीत गाना तक बंद कर देतीं। मेरी खुद की बनोली भी इसकी साक्षी रही फिर छोटे यानी अवर्ण लोगों की, आदिवासियों की क्या बिसात जो उनके विरोध में प्रतिकार का स्वर दे। आजादी के सात दशक बाद आज भी गांवों में सामंतवाद का दबदबा कायम है।

अनगढ़ अखाड़ा उस्ताद लादूराम के साथ डॉ.भानावत।

आज लोक संस्कृति, विशेषकर जनजातीय संस्कृति एवं परम्पराओं पर आधुनिकता के प्रभाव को आप किस प्रकार देखते हैं?

सच तो यह है कि आधुनिकता के प्रभाव से कोई बच नहीं पाया। विकास के नाम पर सरकार ने भी उसे सुगंधाने की बजाय गंदलाने किंवा मटियामेट करने का ही काम किया। गवरी तो कभी की बंद हो जाती यदि सामरजी जैसे लोग लोककला-संस्कृति के संरक्षण का बीड़ा नहीं उठाते। अब गवरी के खेल्ये पेंट पहनकर नाचने लगे हैं। उनसे भी सबकुछ छीन लिया गया है पर गवरी अपने मूल में बची हुई है। उसकी काया कलुषित हुई नहीं कहा जा सकता। उसका नायक बुढिया (महादेव) तथा राइयां (शक्ति एवं पार्वती) और गौरज्या का भोपा देवपात्र होने से उनमें कोई बदलाव नहीं आया है। हमारे सार्थक प्रयत्न प्रभावी होने से अन्यों ने भी इधर ध्यान दिया है। विविध कोणों से प्रयोग किये हैं। शोध का दायरा फैला है और सरकार ने भी अब जाकर उसे संरक्षण देने का मन बनाया है तब भी बहुत कुछ करना बाकी है। मूल में तो आदिवासियों की धार्मिक भावना ही उसे जीवंत और प्राणवंत बनाये है। बांसवाड़ा में किसी समय गवरी अस्तित्व में थी पर अब केवल होली पर बुढिया का स्वांग, बहुरूपिया स्वांग की तरह देखने को मिलता है।

आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति के आक्रमण से लोक संस्कृति को कैसे बचाया जा सकता है?

आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति ने हमारी संस्कृति पर आक्रमण ही नहीं, अपना सिक्का ऐसा जमाया कि हमारा कोई कार्य, कर्म उसके बिना संभव याकि सफल नहीं होता। इससे लोकसंस्कृति को बचने की बात कहां जाकर ठहरती है? आक्रमण को झेला किसने? हमीं ने तो! अब बचाने वाले कौन हैं? वो भी हम ही हैं। तो कौन किसको कह रहा है? हम यदि अपनी संस्कृति से, अपनी परंपरा से, अपनी भारतीयता से जुड़े रहने लग जायेंगे तो यह प्रश्न ही पैदा नहीं होगा। पर अब कहते हैं न कि सर से पानी उतर गया है तब भी हमारी विरासत, हमारी धरोहर के प्रति आस्था और अपनत्व की दृढ़भावना है तो न कोई आक्रमण होगा और न हमारे ऊपर कोई प्रभाव हावी होगा। आज भी ऐसे लोग हैं पर ऊंट के मुंह में जीरे की क्या बिसात!

भारतीय लोककला मण्डल ने अब तक लोकसंस्कृति के संरक्षण के लिए क्या प्रयास किए हैं? इस दिशा में आपकी भूमिका क्या रही है?

भारतीय लोककला मंडल ने जो प्रयत्न किये वे अन्य किसी ने नहीं किये पर वहां भी देवीलाल सामर द्वारा उनकी अंतिम स्वांस तक ही होते रहे। मैं तो इसे अपना गर्वोन्नत सौभाग्य और स्वभाव मानता हूं कि मैं सन् 1958 से 1995 तक वहां रहा। सामरजी के साथ मैं ऐसा जुड़ा कि अन्यत्र जाना स्वीकार नहीं किया। इसे यों भी कहा जा सकता है कि सामरजी ने मुझे अपने साथ ऐसा जोड़ लिया कि उनकी हमारी जोड़ ने उसे द्वि-गुनित से बढ़ाकर अनेक गुनित कर दी और 'योग्य से ही योग्य का संबंध होना योग्य था' जैसी स्थिति में चढ़ै न दूजो रंग वाली ऐसी अनूठी सांस्कृतिक रंगभूमि तैयार की जिसकी समानता और तुलना भी अन्यत्र किसी से नहीं हो सकती। कलामंडल में हमने वह सबकुछ कर लिया जिससे लोकसंस्कृति का अंग-अंग पुनर्प्रतिष्ठत, पुनर्संयमित, पुनर्प्रकाशित एवं पुनर्मूल्यांकित हुआ। इस तरह लोककलाओं के संरक्षण, उन्नयन, प्रदर्शन, प्रकाशन तथा प्रसारण हेतु जो कार्य किया, अन्य किसी एक संस्था याकि व्यक्ति ने नहीं किया। हमने अपने खुले रंगमंच पर पहलीबार लोककलाकारों के प्रशिक्षण शिविर, लोककला संगोष्ठियां, लोकानुरंजन समारोह कर कठपुतली कला को जीवंत ही नहीं किया, उसके विविध नाट्य प्रयोगों से विश्व का प्रथम पुरस्कार तक प्राप्त किया। हमारे प्रयत्नों से लोकसंस्कृतिधर्मी विविधरूपों ने पाठ्यक्रमों में स्थान पाया और प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में अनेक छात्रों ने इन विषयों पर पीएच. डी. की उपाधियां प्राप्त कीं। देश-विदेश के अनेक ऐसे छात्र तथा विद्वान मेरे संपर्क में हैं।

भानावत जी से बातचीत करते हुए ख्यात लेखक श्री माधव नागदा।

आप मूल रूप से कवि हैं। क्या आपको कभी इस बात का मलाल हुआ है कि लोककला मण्डल की व्यस्तताओं के चलते आपका कवि कहीं पीछे छूट गया?

मैं मूल रूप से कवि हूं, ऐसा दावा और भी कइयों ने किया पर मेरी प्रसिद्धि और पहचान गद्य लेखक के रूप में अधिक बनी। छात्र जीवन में तो मैं कविताएं ही लिखता रहा। अंत तक की प्रतियोगिताओं में भी सदैव अव्वल रहा। सामरजी ने भी मेरी कविता सुनकर ही प्रशंसा की और यह कहते हुए भी कि कविता के लिए तो यहां कोई स्थान नहीं है, मुझे अंततः नौकरी में रख लिया। कविता मैं आज भी करता हूं। मेरी कविता पुस्तक 'कोई-कोई औरत' अखिल भारतीय स्तर पर पुरस्कृत भी हुई। कवि के रूप में मैं न स्थापित हूं और न हो पाऊंगा। लेकिन मेरा ऐसा मानना है कि अच्छे लेखक के मन में कविता की अंगीठी निरंतर प्रज्वलित रहती है तब ही गद्य भी उसका प्रकाशवान बना पके हुए अवाड़े सा निखार पाता है।

आप एक अच्छे संस्मरणकार भी हैं। 'शब्द रंजन' में आपके संस्मरण लगातार छपते रहते हैं। आपने डाकू करणा भील से लेकर लोकसंस्कृति के सुमेरू देवीलाल सामर तक कई चरित्रों को अपनी अंतरंग दुनिया का हिस्सा बनाया है। इनमें से कोई ऐसा किरदार जिसे आप कभी भूल न पाये हों?

संस्मरण लिखने पर मेरी प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, गोपालप्रसाद व्यास ने प्रशंसा की। डॉ. प्रकाश आतुर ने 'जिन्हें मैं जानता हूं' नाम से मेरी पुस्तक पर राजस्थान साहित्य अकादमी से प्रकाशन सहायता भी दी। जनसत्ता, दैनिक भास्कर, जलते दीप, जय राजस्थान, चौथा संसार, सुलगते प्रश्न तथा और भी पत्रों में मैंने जो कॉलम लिखे वे संस्मरणमूलक ही अधिक थे। एक संस्मरण 'चंदरी बुआ' शीर्षक से कभी मधुमती में छपा था जिस पर पहलीबार अनेक परिचित-अपरिचितों के मेरे पास फोन आये कि उन्हें वह अच्छा लगा। वह बुआ कानोड़ में मेरे ही ओवरे में महीने के दो रूपये किराये में रहती थी। सफा अंधी थी। चंवरी की धुंआ से ही अंधा गई थी। ठीक से उसने अपने पति का मुंह भी नहीं देखा था। उससे मैंने बालपन में अनेक कहानियां सुनीं। सोनाबाई-रूपाबाई की कहानी को वह अपने पोपले मुंह से रेरके दे-दे कर सुनाती थीं। उस कहानी का समावेश मैंने अपनी प्रकाशनाधीन पुस्तक में भी किया है। यह कहानी थोड़े बहुत रूपांतर के साथ अन्य प्रांतों में भी प्रचलित है।

आपने अपने संस्मरणों में कई स्थलों पर चमत्कारों का इस प्रकार वर्णन किया है जैसे आँखों देखा हाल हो। क्या आप कभी ऐसी पराभौतिक घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं?

अनेक चर्चित लेखकों ने अपनी रचनाधर्मिता में चमत्कारजनित लेखन किया है। पूरी प्रकृति, सृष्टि और संसार ही चमत्कारों, रहस्यों और अलौकिकताओं से बंधा हुआ है। जीवन में जो कुछ सौंदर्यमय है वह सब चमत्कारों की ही चमक से चमत्कृत है। रात-दिन हमारे जीवन परिवेश के जो हिस्से बने पक्ष हमारे साथ हैं वे चमत्कारिक होते हुए भी वैसे नहीं लगते। जो अदृश्य, रहस्यमय और पहुंच से बाहर पराभौतिक हैं वे ही हमें अधिक चमत्कारी लगते हैं। मुझ पर देव-कृपा होने से मुझे वह कुछ दृष्टिगत हुआ जिसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। उन आंखों देखे दृश्यों को कलमबद्ध कर ही मैंने भूतों का मेला, दिव्यात्माओं का मेला, प्रेत-पिशाच संसार तथा अन्य अनेक रहस्यमय स्थलों, व्यक्तियों पर लिखा जिस कारण भी मेरी अलग से व्यापक अनूठी पहचान बनी। इसमें धर्मयुग की बड़ी व्यापक विश्व स्तरीय देन है।

इस प्रकार की घटनाओं का वैज्ञानिक आधार क्या है?

वैज्ञानिक आधार मात्र एक कथन है। प्राचीन ग्रंथों में तथा ऋषि-मुनियों के समय में भी यह सबकुछ था। लोकविज्ञान लोकसम्मत विज्ञान ही है पूरा प्रामाणिक। जो वैज्ञानिक हैं वे खुद चकित और स्तंभित हैं। आपसे ही पूछता हूं आप किसे वैज्ञानिक मानते हैं? मैंने कइयों को कहा, चले जाइये चित्तौड़ के किले पर, प्रतिवर्ष दीवाली को अर्द्धरात्रि के समय भूतों का मेला लगता है। बैकुंठ चतुर्दशी को दिव्यआत्माओं का दरबार जुड़ता है। देखकर आओ तब वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक आधार पर बहस करेंगे।

आपके जीवन की दो बड़ी घटनाएँ, एक जिसे आप कभी याद न करना चाहेंय दूसरी जिसे आप कभी भूलना न चाहें।

ऐसी कोई घटना नहीं। कई घटनाएं देखीं। जिन्हें जगजाहिर करनी थी। लोकदेवता कल्लाजी राठौड़ की कृपा से करदी। जो नहीं करनी थी वे गूंगे का गुड़ बनी हुई हैं। रहस्य को रहस्य बनाये रखने का मजा सब कोई नहीं जानते।

आज के युवाओं को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

युवा को युवा क्या संदेश देगा और बड़ा भी क्या संदेश देगा। उनसे चाहें तो बहुत कुछ लिया जा सकता है। फिर मेरा क्षेत्र तो उस लोक का रहा है जिसे पढ़ेलिखे होशियार और समझदार लोग कुछ अच्छा महत्व का ही नहीं मानते। आपका हिसाब उम्र से किसी को बूढ़ा तथा जवान मानने का है। सतयुग में तो औसत उम्र ही हजार बरस की होती थी। सौ वर्ष का तो पालने में झूलता था।

लाल मादड़ी, नाथद्वारा पिन-313301
मो.9829588494

डॉ.महेन्द्र भानावत के साहित्यिक योगदान विषयक विद्वानों के मत-सम्मत

डॉ.भानावत मूलतः लोकवांङ्मय के व्यक्ति हैं। वे केवल टेबुल-कुर्सी के ही अध्येता नहीं है और न अपने शोधकर्म को समय की सीमा में बांधते हैं। जहाँ भी वे जिससे मिलते हैं, अपनी निगाहें खोल रखते हैं और किसी भी विधा की जहां भी सामग्री मिलती है वे उसे अपनी पैनी नजर में उतार लेते हैं।

देवीलाल सामर, उदयपुर

डॉ.भानावत ने लोक संस्कृति की अनगिनत धुंधली हुई विरासत को सहेज कर नया उजास दिया है। उनके इस कार्य को आने वाली पीढ़ी अधिक सहमझेगी और महत्व देगी।

श्याम परमार, नईदिल्ली

डॉ.भानावत जो कुछ लिखते हैं उससे हमारे लोकजीवन की समृद्धि का ही उद्धार नहीं हो रहा है बल्कि हम कितने समृद्ध हैं यह भी जगजाहिर हो रहा है।

बालकवि बैरागी, मनासा

महेन्द्र पूरी तरह लोक के आदमी हैं। लोकजीवन और उसकी सहस्रों छवियां देखने के लिए उन्हें सहस्रों आंखें मिली हैं। लोकजीवन और साहित्य पर दुतरफे हमले जारी हैं ऐसे में सबकी साहित्यिक यात्रा कठिन होती जा रही है क्योंकि उसे गंभीरता से पढ़ने वाले कम होते जा रहे हैं। तब भी इन विपरीत परिस्थितियों में डॉ.भानावत हमारे बीच एक 'फिनोमिना' ही हैं।

नन्द चतुर्वेदी, उदयपुर

राजस्थान की लोक परम्पराओं के अध्येता और व्याख्याता के रूप में डॉ.भानावत ने लीक से हटकर लोक की साधना का प्रयास किया है तथा उसकी परम्पराओं और मान्यताओं की जड़ तक पहुंचने की क्षमता अर्जित की है।

लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, नई दिल्ली

लोक संस्कृति के साधक के रूप में डॉ.भानावत की प्रशंसा इसलिए भी की जानी चाहिए कि उन्होंने अपने अध्ययन के अधिकांश को आम पाठकों के लिए प्रस्तुत करते हुए लोक संस्कृति की समृद्धि से उसे अवगत कराया है।

नवलकिशोर, उदयपुर

लोक साहित्य से परे होते जा रहे सामान्य जन के साथ-साथ साहित्यिक वर्ग को जोड़ने और इस साहित्य की अन्तःचेतना से उसे निरन्तर संपर्क में रखने का जो कार्य महेन्द्र ने किया है वह केवल कुछ इनेगिने लोगों ने किया है। इनके इस कार्य को हमसे भी अधिक बाहर के लोग ज्यादा जानते हैं।

प्रकाश 'आतुर', उदयपुर

लोकगीतों के विशेषज्ञ डॉ.महेन्द्र बड़ी सुरूचि के आदमी हैं। उनके लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे विद्रूप नहीं लिखते। उनके यहाँ एक सहानुभूति और करुणा का बड़ा ही मजेदार अस्तर या आयाम है जो महत्वपूर्ण है।

प्रभाकर माचवे, नई दिल्ली

डॉ.भानावत लोकमानस की लोकगीत-गंगा के भागीरथी हैं। मैं मालवा निमाड़ की प्रणय कथाओं का चितेरा। उन्होंने निर्भय मीरां में अनेक नई जानकारियों के साथ नये ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मीरां का विस्तृत चरित्र प्रस्तुत किया है। यह सारस्वत लेखन राजस्थान के लिए वरदान सिद्ध हुआ है।

डॉ.शरद पगारे, इन्दौर

जिन व्यक्तियों के कार्यों से मैं प्रभावित हूँ उनमें से एक डॉ.भानावत हैं। जिन भावनाओं को लेकर मैंने काम किया उन्हीं का इनकी कलम में दर्शन करता हूँ। लोकजीवन से जुड़े लोकभाषा के शब्दों के प्रयोग से उनकी रचनाएं जीवंत हो उठी हैं

रामनारायण उपाध्याय, खंडवा

डॉ. भानावत लोक साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान हैं। उन्होंने अपने क्षेत्र के लोकसाहित्य की अनुपमा सेवा की है और अपना जीवन ही इसके अध्ययन और अनुशीलन में समर्पित कर दिया है। उनका लोकसाहित्य तथा संस्कृति संबंधी योगदान मूल्यवान और स्थायी महत्त्व का है।

डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय, वाराणसी

किसी भी पदार्थ को रचना और छोटे से समझे जाने वाले विषय को बड़ा शोधकार्य बना देना डॉ.भानावत की कलम की खूबी है। इन्हीं खूबियों के आधार पर वे आज लोकसंस्कृति के अनिवार्य लेखक बने हुए हैं।

बसंत निरगुणे, भोपाल

किसी भी पदार्थ को रचना और छोटे से समझे जाने वाले विषय को बड़ा शोधकार्य बना देना डॉ.भानावत की कलम की खूबी है। इन्हीं खूबियों के आधार पर वे आज लोक संस्कृति के अनिवार्य लेखक बने हुए हैं।

मनोहरसिंह राठौड़, जोधपुर

डॉ.भानावत उन दुर्लभ व्यक्तियों में से हैं जो अब भी उस रचनात्मक संसार को जीवित रखे हुए हैं जो भौतिक वस्तुओं से नहीं बल्कि जमीन से जुड़े लोगों की कल्पना और सृजनात्मकता से निर्मित होता है। डॉ.भानावतजी का गद्य की मुझे इतना अच्छा लगता है कि जब वे लिखते हैं तब पूरे लोकमय, लोक में आत्मस्थ हो डूब-डूबकर लिखते हैं। अब कहां हैं वैसे लिखने वाले। कोई उन विषयों पर लिखने का सोच भी नहीं सकता। कभी-कभी लगता है, मनुष्य की ऐसी कल्पना भी उसके अवचेतन को कैसे चेतन करती होगी। कैसे कोई ऐसा लिख लेता है। डॉ.भानावत हमारे बीच ऐसे लोकमय बने रहें।

डॉ.सदाशिव क्षोत्रिय, नाथद्वारा

समावर्तन के बारह वर्ष : एक गौरवमयी अविराम यात्रा

श्रीराम दवे

साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सरोकारों को लेकर पिछले बारह वर्षों से अनवरत प्रकाशित हो रही मासिक पत्रिका 'समावर्तन' वस्तुतः कवि, उपन्यासकार, नाट्यविद और शिक्षाशास्त्री डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य का एक ऐसा स्वप्न है जिसे साकार करने में उनके यशस्वी पुत्र श्री अभिलाष भट्टाचार्य, डॉ.अजय भट्टाचार्य तथा पुत्री कृष्णा बनर्जी सहित सभी परिजन तन-मन-धन से लगे हुए हैं।

अप्रैल 2008 से मार्च 2020 तक की यह धरोहरधर्मी समावर्तनी यात्रा निश्चित ही कई खट्टे-मीठे अनुभवों वाली किन्तु संतोषप्रद यात्रा रही है। अप्रैल 2008 से दिसम्बर 2012 तक कव्हर पृष्ठों को छोड़कर शेष श्वेतश्याम पृष्ठों, जनवरी 2013 से जुलाई 2017 तक कव्हर सहित सभी पृष्ठ रंगीन तथा अगस्त 2017 से लेकर आपके हाथों में मौजूद अद्यतन मार्च 2020 के सभी अंक कव्हर पृष्ठों एवं चार अथवा आठ रंगीन पृष्ठों के अलावा श्वेतश्याम पृष्ठों वाली पत्रिका समावर्तन में प्रतिमाह दो प्रमुख सर्जकों जिनमें एक साहित्यकार, एक कलाकार (चित्रकार, रंगकर्मी, संगीतकार अथवा अन्य कला से सम्बद्ध) अथवा एक सामाजिक सरोकारों वाले महानुभाव (पत्रकार, समाजसेवी, बहुविध सर्जक) के कृतित्व और व्यक्तित्व पर क्रमशः एकाग्र, रंगशीर्ष अथवा सरोकार स्तम्भों पर महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित होती रही है। विविध विधाओं जैसे काव्य, कथा, व्यंग्य, चिंतन, नाट्य तथा लोक पर केन्द्रित विशेष स्तम्भों के चौमासे (अर्थात चार माह में एक) और बाद में अर्द्धवार्षिक (अर्थात छः माह में एक स्तम्भ) अपने नए कलेवर और राग लेकर अर्थात वक्रोक्ति, काव्यराग, कथाराग, मनोराग, नाट्यराग तथा लोकराग की सामग्रियों से पाठकों का ज्ञानवर्द्धन समावर्तन के माध्यम से हो रहा है।

समावर्तन के स्थायी स्तम्भों में '**प्रथम पृष्ठ**' (वैदिक ऋचाओं का भावानुवाद), 'अभिमुख' (ज्ञानवर्द्धक सम्पादकीय प्रो.रमेश दवे), '**मेरा नमन**' (समावर्तन के स्वामी, मुद्रक और प्रकाशक डॉ.अजय भट्टाचार्य की ओर से) '**रेखांकित**' (एक युवा कवि की बारह-पंद्रह कविताएं तथा उन पर कवि कथाकार प्रो.निरंजन श्रोत्रिय की समीक्षात्मक टिप्पणी), '**समकाल-कथाकाल**' (किसी एक युवा कथाकार की एक कहानी तथा उस पर वरिष्ठ कथाकार श्री मुकेश वर्मा की टिप्पणी), '**वीक्षा**' (नए प्रकाशित कविता/कहानी संग्रहों/उपन्यासों आदि की समीक्षाएं), देश के विभिन्न शहरों/अंचलों में हो रही साहित्यिक, सांस्कृतिक हलचलों को '**साहित्यिक हलचल**' तथा '**अनन्तिम**' के रूप में मुकेश वर्माजी का विशेष आलेख समावर्तन के वे नियमित स्तम्भ हैं जिनकी पाठकों को प्रतीक्षा रहती है। इन स्तम्भों के अलावा देश के कई कवियों की कविताएँ तथा कहानीकारों की कहानियां आदि भी प्रकाशित होती रही हैं। दिसम्बर 2012 का अंक जहाँ समावर्तन के संस्थापक-सम्पादन-समन्वयक डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य के कृतित्व, व्यक्तित्व एवं सरोकारों पर केन्द्रित रहा है। वहीं समावर्तन का 100वां अंक (जुलाई 2016) तीन विभूतियों अर्थात भारतेन्दु हरिश्चंद्र (रंगशीर्ष), प्रेमचंद (एकाग्र), श्री हरिसिंह गौर (सरोकार) के कृतित्व और व्यक्तियों पर केन्द्रित रहा तथा नवम्बर 2019 का अंक भोपाल में आईसेक्ट समूह द्वारा आयोजित विश्वरंग समारोह में लोकार्पित होकर विश्वकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कृतित्व एवं सरोकारों पर केन्द्रित रहा एवं पाठकों द्वारा सराहा गया है। समावर्तन की अब तक की यात्रा में संपादक मंडल के अलावा दो बार अतिथि संपादकों की सेवाएँ ली गयी है ये अंक है- 100वाँ अंक अर्थात (जुलाई 2016) इसमें श्री कमलकिशोर गोयनका, जयदेव तनेजा तथा प्रो.कांतिकुमार जैन ने क्रमशः एकाग्र, रंगशीर्ष तथा सरोकार स्तंभों हेतु अतिथि संपादन कर समावर्तन का मार्ग प्रशस्त किया। वहीं नवम्बर 2019 का अंक जो कि विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कृतित्व पर केन्द्रित रहा है - के अतिथि संपादन का दायित्व वरिष्ठ चित्रकार/लेखक अशोक भौमिक जी ने निभाकर हमें उपकृत किया है। समावर्तन की इस अनथक और बारह वर्षों वाली एक युग की यात्रा में जिन महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों, कलाकारों तथा सामाजिक सरोकारों वालों महानुभावों पर अंकों में एकाग्र, रंगशीर्ष तथा सरोकार स्तम्भ प्रकाशित हुए हैं उनके नाम इस प्रकार हैं :-

दिल्ली में समावर्तन के प्रवेशांक का लोकार्पण करते हुए वरिष्ठ कवि कुंवरनारायण डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य एवं प्रो.रमेश दवे।

> "किसी भी कार्य की आलोचना तो सहज में ही की जा सकती है किन्तु उस कार्य को बिना किसी अतिरिक्त सहयोग के पूरा किया जाना भले ही सराहना का विषय नहीं हो किन्तु उल्लेखनीय अवश्य होता है। समावर्तन किसी धनाढ्य परिवार की पत्रिका नहीं होकर एक शिक्षक परिवार की मासिक साहित्यिक पत्रिका है जिसका स्वरूप साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं धरोहरधर्मी बनाने की पूरी कोशिश की गई है।"

एकाग्र

सर्वश्री अशोक वाजपेयी, राजेन्द्र यादव,सुनीता जैन, राजी सेठ, रमेशचन्द्र शाह, मन्नू भंडारी, कृष्ण बलदेव वेद, धनंजय वर्मा, अमृतलाल

समावर्तन के 60वें अंक का लोकार्पण

वेगड़, गोविन्द मिश्र, चित्रा मुद्गल,प्रभाकर श्रोत्रिय, विजयकुमार, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, ज्योत्सना मिलन, सूर्यबाला, कुँवरनारायण, परमानंद श्रीवास्तव, सुदीप बनर्जी, कमलकिशोर गोयनका, मृदुला गर्ग, मंजूर एहतेशाम, लीलाधर मण्डलोई, प्रणवकुमार वंध्योपाध्याय, नंदकिशोर आचार्य, नंदकिशोर नौटियाल, रमेश दवे, रामदरश मिश्र, कमलकुमार, श्रीलाल शुक्ल, राजेश जोशी, केदारनाथ सिंह, विजयबहादुरसिंह, शमशेर बहादुरसिंह, नरेश मेहता, स.हि.वात्स्यायन 'अज्ञेय', केदारनाथ अग्रवाल, वीरेन्द्रकुमार जैन, नागार्जुन, सूर्यकांत नागर, बलराम गुमास्ता, मालती जोशी, सुधा अरोड़ा, नामवरसिंह, मैथिलीशरण गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, हरिनारायण व्यास, रमेशदत्त दुबे, नईम, प्रमोद वर्मा, गुलज़ार, अमरकांत, उर्मिला शिरीष, भगवत रावत, देवव्रत जोशी, शिवमंगलसिंह 'सुमन', प्रभातकुमार भट्टाचार्य, प्रेमशंकर रघुवंशी, दिनकर सोनवलकर, प्रमोद त्रिवेदी, कुसुम अंसल, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, शशांक, नरेन्द्रमोहन, महीपसिंह, शिवमूर्ति, ध्रुव शुक्ल, शानी, चन्द्रकान्ता, प्रताप सहगल, अभिमन्यु अनंत, रमेश उपाध्याय, पुष्पपालसिंह, जगदीश चतुर्वेदी, भगवतीकुमार शर्मा, कृष्णा सोबती, राजेन्द्र मिश्र, कुसुम खेमानी, भगवानदास मोरवाल, जयकुमार 'जलज', काशीनाथ सिंह मार्कण्डेय, मैत्रेयी पुष्पा, राजेश जैन, नासिरा शर्मा, शरद पगारे, गिरिराज किशोर, कृष्णा अग्निहोत्री, राजेन्द्र उपाध्याय, रघुवीर चौधरी, दामोदर खड़से, दुर्गाप्रसाद झाला, प्रेमचंद, चन्द्रसेन विराट, सतीश दुबे, पद्मा सचदेव, अल्पना मिश्र, धर्मवीर भारती, एकान्त श्रीवास्तव, भारत भारद्वाज, उषाकिरण खान, महेन्द्र भटनागर, रमाकांत श्रीवास्तव, जहीर कुरैशी, दुष्यन्त कुमार, मीनाक्षी जोशी, बटुक चतुर्वेदी, दामोदरदत्त दीक्षित, श्रीराम परिहार, हिमांशु जोशी, से.रा.यात्री, बलराम, सूर्यनारायण व्यास, वनमाली, सुबोधकुमार श्रीवास्तव, रामनारायण उपाध्याय, नीरजा माधव, शेषेन्द्र शर्मा, उद्भ्रान्त, गिरिराजकुमार माथुर, मधु कांकरिया, जीवनसिंह ठाकुर, प्रदीप, किशोर काबरा, विष्णु खरे तथा महेन्द्र भानावत।

समावर्तन की वेबसाइट के लोकार्पण के अवसर पर।

रंगशीर्ष

के.एन.पणिक्कर, बादल सरकार, सैय्यद हैदर 'रज़ा', विजय तेंदुलकर, कुमार गंधर्व, हकु शाह, ब.व.कारन्त, सिद्धेश्वर सेन, अखिलेश, दिनेश ठाकुर, हबीब तनवीर, देवेन्द्रराज अंकुर, नरेन्द्रसिंह कुशवाह, आर.सी.भावसार, देवीलाल परमार, सत्यव्रत सिन्हा, रतन थियाम, पुरू दाधीच, गिरीश रस्तोगी, राजेन्द्र गुप्त, अजय चक्रवर्ती, सतीश मेहता, भावसार 'बा', गिरिजा देवी, विष्णु चिंचालकर, शम्पा शाह, गुन्देचा बन्धु, सचिदा नागदेव, वसुन्धरा कोमकली, विनसेन्ट वॉन गॉग, पं.भीमसेन जोशी, शरद जोशी, प्रहलाद सिंह टिपान्या, पं.गोकुलोत्सव जी महाराज, वसन्त पोद्दार, संतोष जड़िया, कलापिनी कोमकली, संजय मेहता, विष्णु भटनागर, प्रताप पंवार, प्रभातकुमार भट्टाचार्य, विष्णु पाठक, रहीम गुड्डी, मकबूल फिदा हुसैन, अशोक भौमिक, जयदेव तनेजा, हरीश पाठक, मीरा कान्त, शेखर सेन, रघुनाथ सेठ, कृष्णकांत, हरिपाल त्यागी, नादिरा बब्बर, दयाप्रकाश सिन्हा, शरद नागर, अशोक वाजपेयी, सत्यदेव दुबे, चरन शर्मा, अंजन श्रीवास्तव, प्रमोद गणपत्ये, प्रभु जोशी, उषा गांगुली, सीमा भार्गव पाहवा, भारतरत्न भार्गव, जनक एच.दवे, नरेन्द्र नागदेव, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, उमा झुनझुनवाला, अफ़जल, उषा भटनागर, श्रीराम जोग, ईश्वरी रावल, सतीश पावड़े, राजेन्द्र नागदेव, शंभु मित्र, संदीप राशिनकर, रीता गांगुली, आलोक चटर्जी, अमीन सयानी, कमलाकर सोनटक्के, प्रनति भट्टाचार्य, भालू मोढ़े, वि.श्री.वाकणकर, कृष्णा वर्मा, कुसुम अंसल, श्रीकृष्ण जोशी, शिवकुमारी जोशी, सुरभि विप्लव, दीपेन्द्रसिंह रघुवंशी, रघुनाथ कृष्णा जी फड़के, बाबा डिके, सतीश चव्हाण, शरद शर्मा, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जगदीश कौशल, नरहरि पटेल।

सरोकार

मोहम्मद जाकिर हुसैन, मीना पिम्पलापुरे, कन्हैयालाल नंदन, कपिल तिवारी, विट्ठलभाई पटेल, रामचंद्र रघुवंशी काकाजी, श्यामसुंदर निगम, प्रबलसिंह सुराना, ललित सुरजन, संतोष चौबे, कांतिकुमार जैन, चंद्रकांत वांदिवड़ेकर, भगवलीलाल राजपुरोहित, सत्यमोहन वर्मा, कृष्णदत्त पालीवाल, प्रभातकुमार भट्टाचार्य, कृष्णलाल मल्होत्रा, नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, विश्वनाथ, राहुल बारपुते, शुभदर्शन, विश्वनाथ सचदेव, राजेन्द्र माथुर, शिव

समावर्तन द्वारा आयोजित अपने संपादक मंडल के यशस्वी अध्यक्ष प्रो.रमेश दवे के अमृत महोत्सव के अवसर पर दीपदीपन, अभिनंदन एवं कृति 'अव्यक्त की खोज का लोकार्पण।

शर्मा, महात्मा गाँधी, हरीश प्रधान, कैलाश सत्यार्थी, बालकवि बैरागी, प्रकाश उप्पल, धनंजय वर्मा, मधुकरराव चौधरी, कैलाशचंद्र पंत, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, श्रीनिवास रथ, रामशंकर द्विवेदी, इन्द्रनाथ चौधरी, कृष्णदत्त पालीवाल, हरिसिंह गौर, नंददुलारे वाजपेयी, विजयदत्त श्रीधर, मोहन गुप्त, कृष्णबिहारी मिश्र, महिमा मेहता, महेन्द्र शर्मा, कृष्णमंगलसिंह कुलश्रेष्ठ, महेन्द्र गगन, बसन्त निरगुणे, स्टीफन हॉकिन्स, तरसेम गुजराल, ज्योति जैन, कमल किशोर गोयनका, सांवरमल सांगानेरिया, क़मर मेवाड़ी, परशुराम शुक्ल, हस्तीमल हस्ती, सुमित्रा अग्रवाल, अमरनाथ भट्टाचार्य, विश्वम्भर नेवर, नरेन्द्र दीपक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सुदर्शना द्विवेदी, एवं रघुबीरसिंह

समावर्तन का यह सौभाग्य है कि इसके सम्पादक मंडल में देश के लब्ध प्रतिष्ठ रचनाकार सम्मिलित हैं। सम्पादक मंडल के अध्यक्ष कवि, कथाकार, उपन्यासकार, नाटककार, अनुवाद, संपादक प्रो.रमेश दवे समावर्तन के प्रवेशांक से लेकर अद्यतन अंक अर्थात निरन्तर अभिमुख (संपादकीय) से हम सबको लाभान्वित कर रहे हैं। चिन्तनपरक दृष्टि और संचित ज्ञान की जुगलबंदी उनके संपादकीय का शुक्ल पक्ष है और यही कारण है कि समावर्तन को प्रतिक्रिया स्वरूप प्राप्त होने वाले पाठकों के अधिकांश पत्रों में प्रो.रमेश दवे के अभिमुख आलेखों की प्रशंसा अवश्य होती है।

समावर्तन के संस्थापक सम्पादन समन्वयक डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य ने वरिष्ठ कथाकार समीक्षक श्री मुकेश वर्मा से प्रत्येक अंक में चिंतन परक 'अनंतिम' लिखने के क्रम हेतु आग्रह किया था जिसे उन्होंने अप्रैल 2010 से नियमित लिखने का बनाया हैं। '**अनन्तिम**' में मौजूद वर्माजी का प्रेरक चिंतन, मुखर समीक्षण तथा प्रखर भाषा चेतना असंख्य पाठकों और सर्जकों का मार्गदर्शन करती है।

मुकेश वर्मा जी की ही तरह श्रद्धेय प्रभातजी ने ख्यात कवि-कथाकार श्री निरंजन श्रोत्रिय से प्रतिमाह एक युवा कवि की कुछ कविताओं पर समीक्षात्मक टिप्पणी लिखने तथा उसे रेखांकित करने का आग्रह किया था जिसे उन्होंने अप्रैल 2010 से अनवरत रूप से जारी रखा है तथा अभी तक उन्होंने 119 युवा कवियों को रेखांकित कर उन्हें एक बड़ा मंच प्रदान कर प्रशंसनीय कार्य किया है। प्रख्यात आलोचक स्व.डॉ.नामवरसिंह ने भी डॉ.श्रोत्रिय के इस कार्य की सराहना की थी। यह भी ज्ञातव्य है कि श्रद्धेय प्रभातजी की प्रेरणा से समावर्तन में प्रकाशित '**रेखांकित**' स्तंभ की कविताओं तथा डॉ.श्रोत्रिय की समीक्षात्मक टिप्पणी के अब तक छः संकलन (जिन्हें संपादक मंडल के अध्यक्ष प्रो.रमेश दवे ने अज्ञेय के तारसप्तक की परम्परा में '**युवा द्वाद्वश**' की संज्ञा से अभिहित किया है) प्रकाशित हो चुके हैं तथा जिन्हें देशभर में पढ़ा और सराहा जा रहा है। आइए! 'रेखांकित' स्तम्भ में रेखांकित हुए ऐसे युवा कवियों के नामों से आपका परिचय कराएं-

संजय माथुर, प्रदीप जिलवाने, कुमार विनोद, कमलेश्वर साहू, जितेन्द्र चौहान, अशोककुमार पांडे, अमित मनोज, व्योमेश शुक्ल, हरि मृदुल, बुद्धिलाल पाल, नीलोत्पल, दिनकर कुमार, विमलेश त्रिपाठी, विनीत जोशी, मनोजकुमार झा, प्रांजल धर, कुमार अनुपम, महेश वर्मा, अपर्णा मनोज, सुरेश सेन निशांत, महेशचन्द्र पुनेठा, केशव तिवारी, राजेश सक्सेना, गुंजन शुक्ला, बहादुर पटेल, ज्योति चावला, हरिओम, प्रज्ञा रावत, मोहन सगोरिया, अरुण शीतांश, अरुणाभ सौरभ, शिरीष कुमार मौर्य, मोनिका कुमार,

मुम्बई की ख्यात संस्था कुतुबनुमा में समावर्तन का लोकार्पण करते हुए वरिष्ठ पत्रकार नंदकिशोर नौटियाल, विश्वनाथ सचदेव एवं प्रभातकुमार भट्टाचार्य।

समावर्तन के 100वें अंक के लोंकार्पण समारोह में साहित्य अकादमी के अध्यक्ष विश्वनाथप्रसाद तिवारी, संतोष चौबे, धनंजय वर्मा एवं समावर्तन परिवार।

नीलकमल, शायक आलोक, लीना मल्होत्रा, सुशोभित शक्तावत, नित्यानंद गायेन, संतोष कुमार तिवारी, प्रदीप मिश्र, प्रदीपकांत, भरत प्रसाद, विपीन चौधरी, अंजू शर्मा, संतोष कुमार चतुर्वेद, अविनाश मिश्र, अनुज लुगुन, रामजी तिवारी, विवेक चौरसिया, फरीद खां, गौतम राजरिशी, आत्मारंजन, मंत्र मुकीम, अमित उपमन्यु, संतोष एलेक्स, मणिमोहन, अमेयकांत, अरुण यादव, बाबुषा कोहली, स्वरांगी साने, शम्भू यादव, शहनाज इरानी, अनिल पुष्कर, शंकरानंद, संतोष श्रेयांस, मिथिलेश कुमार राय, राकेश रोहित, सतीश नूतन, अदनान वकील दरवेश, सुजाता, रश्मि भारद्वाज, गौरव पाण्डेय, दीप्ति कुशवाह, अर्पण कुमार, अजय कुमार पाण्डेय, सुरेन्द्र रघुवंशी, तिथि दानी, लवली गोस्वामी, विवेक निराला, निशांत, नेहा नरूका, पूनम शुक्ला, शिरोमणि महतो, आनंद गुप्ता, आभा दुबे, वीरू सोनकर, रूचि भल्ला, पल्लवी त्रिवेदी, संध्या निवेदिता, कमलजीत चौधरी, अरुणश्री, राहुल देव, मृग तृष्णा, पम्मी राय, अस्मुरारी नंदन मिश्र, यशस्वी पांडेय, उपासना झा, युनूस खान, विहाग वैभव, देवेश पथ सारिया, सोनी पाण्डेय, आरती, गणेश गनी, ओम नागर, आभा बोधिसत्व, प्रदीप सैनी, अनामिका चतुर्वेदी, विवेक चतुर्वेदी, अनुराधा अनन्या, कुमार मंगलम, घूँघरू, भास्कर चौधुरी, अणुशक्ति सिंह, भास्कर लाक्षाकार, आदित्य शुक्ल, अंचित, रोहित कौशिक, विजयासिंह तथा जसिंता केरकेट्टा।

एकाग्र, रंगशीर्ष, सरोकार, समकाल कथाकाल, रेखांकित जैसे नियमित स्तम्भों के अलावा व्यंग्य प्रधान स्तम्भ 'वक्रोक्ति' अक्टूबर 2008 से समावर्तन के अधबीच शुरू किया गया जिसमें एक व्यंग्यकार तथा एक कार्टूनिस्ट के अलावा अन्य व्यंग्य प्रधान सामग्री संयोजित की जाती रही है लगभग 20 पृष्ठों के इस स्तम्भ के सम्पादक प्रसिद्ध कथाकार व्यंग्यकार श्री सूर्यकांत नागर (इन्दौर) को तथा उनका सहयोग किया कवि-लेखक श्री श्रीराम दवे ने। अब तक वक्रोक्ति के 30 अंक प्रकाशित हो चुके हैं वक्रोक्ति के 28 अंक (सितम्बर 2018) तक श्रीराम दवे ने महत्त्वपूर्ण सहयोग किया। बाद में वक्रोक्ति के अंक 29 से व्यंग्यकार डॉ.हरीशकुमार सिंह वक्रोक्ति के सम्पादक सूर्यकांत नागर जी को सम्पादन सहयोग कर रहे हैं। वक्रोक्ति में प्रकाशित व्यंग्याग्र तथा व्यंग्यशीर्ष की सूची निम्नानुसार हैं।

व्यंग्याग्र

कांतिकुमार जैन, डॉ.शिव शर्मा, ज्ञान चतुर्वेदी, सरोजकुमार, प्रेम जनमेजय, विष्णु नागर, गोपाल चतुर्वेदी, नरेन्द्र कोहली, कृष्ण चराटे, श्रीकान्त आप्टे, देवी सरन, दामोदरदत्त दीक्षित, कुंजबिहारी पाण्डेय, यशवंत व्यास, विनोद शंकर शुक्ल, जवाहर चौधरी, हरि जोशी, डॉ.सुरेन्द्र वर्मा, शंकर पुणतांबेकर, हरीश नवल, अश्विनीकुमार दुबे, मुकेश वर्मा, हरिशंकर परसाई, सूर्यबाला, सुशील सिद्धार्थ, रोमेश जोशी, कैलाश मण्डलेकर, ब्रजेश कानूनगो, विनोद साव, स्व.शिव शर्मा।

व्यंग्यशीर्ष

आबिद सुरती, डॉ.सादिक, प्राण शर्मा, काक, आर.के.लक्ष्मण, सुधीर दर, मारियो मिरांडा, निर्मीश ठाकर, देवेन्द्र शर्मा, त्र्यम्बक शर्मा, वैंकटेश गुड्डूराव नरेन्द्र, इस्माइल लहरी, कीर्तिश भट्ट, अभिषेक तिवारी, बी.पांडुरंग राव, चन्द्रशेखर हाड़ा, विवेक मेहेल, कुमार (गोविन्द लाहोटी), हरिओम तिवारी, सतीश उपाध्याय, मंगेश तेंदुलकर, राजेशकुमार दुबे, इरफान, शिरीष श्रीवास्तव, मनोहर सप्रे, वीरेन्द्रसिंह, राजकमल, काजलकुमार, इस्माइल आदि।

व्यंग्य केन्द्रि विशेष प्रस्तुति वक्रोक्ति के अलावा चिन्तन प्रधान मनोराग (विशेष संपादक रमेश दवे), कथा केन्द्रित कथाराग (विशेष सम्पादक श्री मुकेश वर्मा), कविता केन्द्रित काव्यराग (विशेष संपादक श्री श्रीराम दवे)

समावर्तन के संस्थापक-संपादन-समन्वयक डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य के 81वें जन्मदिवस पर आयोजित समारोह अस्सी प्रभात वर्ष के अवसर पर वरिष्ठ कवि श्री केदारनाथसिंह, प्रभाकर श्रोत्रिय, चन्द्रप्रकाश द्विवेदी, मनोहर वर्मा एवं समावर्तन परिवार।

समावर्तन के 75वें अंक का सूरत में लोकार्पण करते हुए गुजराती के वरिष्ठ साहित्यकार भगवतीकुमार शर्मा एवं समावर्तन परिवार।

नाट्यकेन्द्रित 'नाट्यराग' (विशेष संपादक श्री भारतरत्न भार्गव) तथा लोक साहित्य- लोक संस्कृति केन्द्रित विशेष प्रस्तुति लोकराग (संपादक श्रीराम दवे) के माध्यम से साहित्य-संस्कृति की लगभग सभी विधाओं के रचनाकारों के अवदान पर प्रचुर और महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की गयी है। देखें-

मनोराग

रमेशचन्द्र शाह, यशदेव शल्य, धनंजय वर्मा, प्रभाकर श्रोत्रिय, मुकुन्द लाठ, अमृतलाल वेगड़, जयशंकर प्रसाद, वीरेन्द्र कुमार जैन, संतोष चौबे, श्यामसुंदर निगम, महेन्द्र शर्मा, नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, स.ही.वात्स्यायन 'अज्ञेय', मालती शर्मा, महात्मा गांधी की 150वीं जयंती पर विशेष आदि प्रस्तुतियां।

कथाराग

मन्नू भंडारी, रमेश दवे, राजेन्द्र यादव, अमरकांत, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, ज्ञानरंजन, मालती जोशी, वल्लभ सिद्धार्थ, हरि भटनागर, संतोष चौबे, सुधा अरोड़ा, भालचन्द्र जोशी, नवीन सागर, सूर्यबाला, अखिलेश, जगन्नाथप्रसाद चौबे 'वनमाली' तथा संतोष चौबे।

काव्यराग

कुँवरनारायण, केदारनाथ सिह, श्री नरेश मेहता, गजानन माधव मुक्तिबोध, शमशेर बहादुरसिंह, गुलजार, लीलाधर मण्डलोई, सुनीता जैन, नरेन्द्र मोहन, सरोज कुमार, भारतरत्न भार्गव, प्रमोद त्रिवेदी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, त्रिलोचन, मोहन सपरा, प्रदीप मिश्र, कौशल किशोर।

नाट्यराग

दिसम्बर 2016 से शुरू हुए इस स्तम्भ में अभी तक कुल 6 प्रस्तुतियाँ ही हुई है जिनमें केवलम नारायण पणिक्कर, हबीब तनवीर पर विशेष प्रस्तुतियों के अलावा शेष प्रस्तुतियों में इसके विशेष संपादक श्री भारतरत्न भार्गव के समकालीन नाट्य चिंतन पर विशेष आलेख हैं।

लोकराग

लोक संस्कृति और लोकसाहित्य पर केन्द्रित इस विशेष प्रस्तुति में देश प्रदेश के विभिन्न अंचलों की लोक संस्कृति पर विद्वान लेखक-लेखिकाओं के आलेख एवं तत्संबंधी चित्र/घटनाओं आदि के उल्लेख से पाठकों का खूब प्रतिसाद मिला। इब तक इसकी कुल 38 (लोकरंग तथा लोकराग) प्रस्तुतियाँ

समावर्तन के विभिन्न अंकों के मुख पृष्ठ

हो चुकी है तथा देश के लगभग 18 प्रदेशों की लोक संस्कृति आदि पर पठनीय सामग्री दी गई है।

उपरोक्त सभी महत्त्वपूर्ण स्तम्भों के अलावा समावर्तन के प्रत्येक अंक के पृष्ठ 5 पर स्थित वैदिक ऋचाओं के भावानुवाद के विशेष स्तम्भ **'प्रथम पृष्ठ'** को खूब पढ़ा गया। प्रारंभ में वरिष्ठ संस्कृतवेत्ता डॉ.राधावल्लभ त्रिपाठी, स्व.डॉ.राममूर्ति त्रिपाठी तथा स्व.जगदीश शर्मा जी ने इस स्तम्भ को समृद्ध किया किन्तु बाद में वैदिक विद्वान डॉ.केदारनाथ शुक्ल ने मार्च 2010 से जून 2018 तक (एक सौ अंकों में) क्रमशः वैदिक ऋचाओं के सुबोध और सरल भावानुवाद प्रस्तुत कर समावर्तन को महत्त्वपूर्ण मासिक पत्रिका बना दिया। वर्तमान में जुलाई 2018 से देववाणी संस्कृत के विद्वान डॉ.मुरलीधर चांदनीवाला जी इस स्तम्भ को अपने वैदुष्य से लाभान्वित कर रहे हैं।

समावर्तन में समय-समय पर कवि-कथाकार तथा प्रख्यात आलोचक और संपादक डॉ.धनंजय वर्मा ने अपने **धारावाहिक आलेखों** के माध्यम से अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति से समावर्तन के पाठकों को लाभान्वित किया है। इन आलेखों में प्रमुख हैं -

1- ''हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी''

2- ''साझी विरासत''(जिसमें प्रमुख रूप से अमीर खुसरो, मीर, ग़ालिब, फिराक़ और फैज़ जैसे पाँच प्रमुख क्लासिक शायरों पर महत्त्वपूर्ण सामग्री)।

3- ''खुतुत से नुमायां हमदम'' (धनंजय वर्मा का समकालीन साहित्यकारों से पत्राचार) आदि।

समावर्तन के संस्थापक संपादन समन्वयक डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य ने भी समय-समय पर समकालीन सृजन-चिन्तन और संस्मरणों के अपने अनियतकालीन स्तम्भ **'मेरा पन्ना'** से पाठकों को लाभान्वित किया। वहीं उन्होंने युवा हो रहे बच्चों को साहित्यिक संस्कार देने के निमित्त मई-2015 से **'बालसखा'** (जो बाद में **'नयी पौध'**) स्तम्भ की शुरूआत की तथा इसका विशेष संपादक उन्होंने सुश्री वाणी दवे को बनाया। वाणी जी ने इस स्तम्भ को कई महीनों तक नियमित रूप से प्रस्तुत किया। बाद में श्रद्धेय प्रभातजी ने सुश्री वाणी को लघुकथा केन्द्रित स्तम्भ **'घरोंदे'** का विशेष सम्पादक बनाया। इस द्वैमासिक स्तम्भ में सुश्री वाणी किसी एक लघुकथाकार की 7-8 लघुकथाएँ चयन कर तथा उन पर अपनी समीक्षकीय टिप्पणी प्रस्तुत करती है। घरोंदे की अब तक बारह प्रस्तुतियाँ हो चुकी हैं तथा यह क्रम जारी है।

उपरोक्त नियमित स्तम्भों के अलावा विषय विशेष के विद्वान लेखकों के भी **धारावाहिक स्तम्भ** प्रकाशित हुए थे जिनमें प्रमुख हैं।

1- अर्थजगत - स्व.विष्णुदत्त नागर

2- स्वान्तःसुखाय - प्रो.सरोजकुमार

3- सिनेमा - मो रफीक खान

4- भूले-बिसरे (शायरों की ग़ज़लें) - श्री जहीर कुरैशी

5- प्रतिश्रुति - श्री अभिषेक कुमार गौड़ (त्रैमासिक पत्रिका 'दस्तावेज' के 150 अंकों पर विशेष)

6- अनुगायन - श्री सत्यमोहन वर्मा द्वारा विदेशी कवियों की कविताओं का अनुवाद

7- सिनेमा रंगमंच - श्रीमती कृष्णा बनर्जी

समावर्तन का मई 2017 का अंक एक विशेष प्रस्तुति से हमेशा स्मरणीय रहेगा। इस अंक में विद्वान लेखक, कथाकार तथा अनुवादक डॉ.रामशंकर द्विवेदी (उरई उ.प्र.) का समावर्तन के 100 अंकों की विहंगम यात्रा पर एक विस्तृत आलेख हैं जिसमें उन्होंने समावर्तन के महत्त्वपूर्ण अवदान को रेखांकित किया है। फलस्वरूप इस अंक (110) में एकाग्र, रंगशीर्ष या सरोकार जैसे नियमित स्तम्भ नहीं हैं। दिसम्बर 2012 का अंक समावर्तन के संस्थापक सम्पादन समन्वयक डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य के कृतित्व और व्यक्तित्व पर उनके 81वें जन्म पर्व पर केन्द्रित होकर प्रकाशित हुआ। इस अंक में अन्य कोई प्रमुख स्तम्भ प्रकाशित नहीं हुए। समावर्तन के दूसरे वर्ष में महात्मा गाँधी की कृति 'हिन्द स्वराज' को आठ अंकों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जाना पाठकों के लिए उल्लेखनीय उपलब्धि रहा। समावर्तन के विभिन्न अंकों में **धरोहर** स्तम्भ में साहित्य के गौरव रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित होती रही है इसी तरह **देशान्तर** में दूसरे देशों के रचनाकारों की तो भाषान्तर में हिन्दीतर भाषाओं की रचनाओं के अनुवाद को प्रकाशित किया जाकर पाठकों को लाभान्वित किया गया।

'चिट्ठी-पत्री' स्तम्भ में पाठकों के पत्रों को प्रकाशित कर एक महत्त्वपूर्ण दायित्व पूरा किया गया। समय-समय पर समावर्तन के अंकों में वरिष्ठ चित्रकार तथा समावर्तन के कला संपादक श्री अक्षय आमेरिया के अलावा सर्वश्री अशोक भौमिक, मुकेश बिजौले, संदीप राशिनकर, राजेन्द्र परदेशी, काजलकुमार, प्रभृति कलाकारों की पेंटिंग्स अथवा रेखाचित्र भी प्रकाशित हुए है ख्यात व्यंग्य चित्रकार श्री देवेन्द्र के कार्टून चित्र भी कईअंकों में पाठकों का मनोरंजन करते रहे हैं।

यह सही है कि प्रत्येक कार्य पूर्णता का आशीर्वाद साथ लेकर चलता है तथापि यह अलग बात है कि कभी-कभी विपरीत परिस्थितियाँ आने पर विरोध आते हैं तथा क्रम टूटते हैं तो कभी त्रुटियाँ भी होती है। कुछ त्रुटियाँ अक्षम्य होती है तो कुछ क्षम्य। निश्चित ही समावर्तन में श्रेष्ठतम प्रयत्नों के बावजूद प्रूफ की तथा फोटो आदि की गलतियाँ रहती आयी है जिसके लिए विद्वान लेखकों तथा पाठकों ने समय-समय पर ध्यानाकर्षण किया है। इन त्रुटियों के लिए हमने समय-समय पर क्षमा प्रार्थना भी की है तथा पुनः क्षमायाचना करते हैं।

किसी भी कार्य की आलोचना तो सहज में ही की जा सकती है किन्तु उस कार्य को बिना किसी अतिरिक्त सहयोग के पूरा किया जाना भले ही सराहना का विषय नहीं हो किन्तु उल्लेखनीय अवश्य होता है। समावर्तन किसी धनाढ्य परिवार की पत्रिका नहीं होकर एक शिक्षक परिवार की मासिक साहित्यिक पत्रिका है जिसका स्वरूप साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं धरोहरधर्मी बनाने की पूरी कोशिश की गई है। देश के कमोबेश सभी प्रांतों तथा कुछ अन्य देशों में कई लेखकों और पाठकों तक प्रतिमाह नियमित रूप से पहुँचने वाली इस पत्रिका को विगत बारह वर्षों में केन्द्र सरकार की ओर से तो एक भी विज्ञापन प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु मध्यप्रदेश सरकार द्वारा अभी तक कुल दो-तीन विज्ञापन ही प्राप्त हुए हैं। अशासकीय स्तर पर भी समावर्तन को उतने विज्ञापन प्राप्त नहीं हुए हैं जिससे इसके मुद्रण और कार्यालयीन व्यय की प्रतिपूर्ति हो सके। विशुद्ध रूप से समावर्तन का प्रकाशन साहित्य जगत और हिन्दी के प्रति समावर्तन और भट्टाचार्य परिवार की ओर से विनम्र प्रणति है।

विद्वान लेखकों/साहित्य-संस्कृति प्रेमियों तथा पाठकों से यही अनुरोध है कि वे समावर्तन को अपेक्षित सहयोग करते रहे ताकि यह अनवरत प्रकाशित होकर आप तक पहुँचता रहे। स

- मो.094259-15010

कविताएँ

धर्मपाल जैन

डायरी

डायरी के पन्ने
लिखे तो मैंने ही हैं
इनमें जो सच, झूठ है
मैं ही जानता हूँ
तुम कभी गलती से पढ़ो भी तो
उतना ही ऐतबार करना
जितना तुम
आमतौर पर करती हो।
यह मेरी डायरी है
मुझसे ज्यादा सच नहीं कह सकती।

सूर्ख लाल-काले गुलाब की पत्ती
जो बीच में कहीं दिखी होगी तुम्हें
शुरू से ही अल्पगंधा रही है
यह उस गुलाब की है
जो किसी जन्मदिन पर दिया था तुमने।
डायरी को बोलने के लिए
तुम्हारें होंठ चाहिए थे
तो रख दिया था इसे।

कुछ लिखावटों पर जो स्याही फैली है
तुम्हारी भी आँखें टपकी थीं उन दिनों
और जो हर्फ़
गहरी रौशनाई में दब गए हैं
उनका दर्द भर दिया है समय ने
और जो कटे-फटे पन्ने हैं कहीं
कोई जंग लड़ी होगी और
अगली हार से बचने के सबब
कुछ कायदे लिखे होंगे वहाँ।

अब जो लिखा बचा है
ठीक है
ऐसा ही है जीवन और प्रेम

संविधान के लोग

शाब्दिक चेतावनियों
पानी की बौछारों
प्लास्टिकी कारतूसों
आसमान में दगी गोलियों
इनके बावजूद जो सड़क पर बचते हैं
वे लोग नहीं हो सकते
पुलिस कहती है
लोग ऐसे नहीं होते।
आपने जिन्हें देखा है
दरवाजों की दरारों से झाँकते
चीखते बच्चों को चुप कराते
रोती औरतों को डॉट कर भगाते
खुद डर से सहमे-सहमे
घर में दुबकते
पुलिस कहती हैं
वे ही लोग होते हैं
संविधान में ऐसे लोगों का जिक्र है।

शब्द

पारदर्शी खिड़की के उस ओर
बार-बार देखता हूँ
सूरज का विचलन कोण
आकाश के बदलते रंग
राकेट के धूएँ की लंबी लकीरें
उमड़ते-घुमड़ते काले-सफेद बादल
हरे-भरे पेड़, लहराती-बहती नदी
मकानों और सड़कों पर आवाजाही
और हर कहीं तैरते शब्द।

मैं जादूगर बन शब्दों को बुलाता हूँ
कभी चाय पर
मद्धम संगीत पर या वैसे ही
बहुत जिद्दी होते हैं ये
कुछ ही आते हैं
न क्रम में ढंग से बैठते हैं
न सीधे मुँह बात करते हैं
जब चाहे खिड़की से कूद जाते हैं
फटने-टूटने के डर के बिना।

मैंने देखा है
जब भी खुली होती है खिड़की
बहती हवा पर सवार
उछलते-कूदते हँसते
बहुत सारे शब्द
सारे घर में भर जाते हैं
मुझे पकड़ लाते हैं
और कहते हैं
लिखो, अब लिखो। स

1512-17 एनडेल ड्राइव
एम2एन2डब्ल्यू7, कनाड़ा
फोन+416 225 2415

श्रीमती रश्मि रमानी

पुकार

राधा
मैं तेरी पुकार सुनता हूँ
हर घड़ी, हर पल

मुझे पता है कि
तुम मेरी बात पर विश्वास नहीं करोगी
यही कहोगी तुम भी
भला पुरुष का क्या भरोसा?

पर राधा! तुम ही कहो
द्वारका के महलों में
रेशमी कपड़ों और सोने-चाँदी के ढेर में
अनगिनत रानियों की आवाजाही के बीच
क्या मेरी पुकार तुम तक पहुँचेगी?

राधा
तुम मेरे करीब हो
हमारा संबंध
हर रिश्ते से ऊपर, हर रिश्ते से अलहदा
प्रेमी-प्रेमिका का हमारा रिश्ता
निराला नहीं है

राधा
तुमसे दूर मैं
पानी में बहती खाली गागर की तरह हूँ
इस गागर में समाई हवा
और कुछ नहीं
तुम्हारे खामोश उच्छवास हैं
स्त्री के तन का सामीप्य
मात्र शरीर भर का नहीं
बल्कि आत्मा का भी होता है
मेरी आत्मा अकेलेपन के हर क्षण में
तुम्हारे लिए छटपटाती रही है

राधा!
संसार तुम्हारी पुकार सुनेगा
तुम्हारे प्रेम को सराहेगा
पर मेरे टूटे हृदय
और मेरे भीतर चुभ रही
फाँस की चुभन को
क्या कोई वाणी देगा ? स

30, पलसीकर कॉलोनी, मानस मेंशन, फ्लैट नं.201
सेकेण्ड फ्लोर जूनी इंदौर के सामने इन्दौर-452004
मो.9827261567

अशोक गीते के तीन वासंती गीत

दिन वासंतिक

दिन है हल्दई,
रातें चम्पई।
दिन वासंतिक आये।।

धूप कटीली,
हवा हठीली।
खेत-खेत में,
सरसों पीली।
स्वप्न नशीलें,
भाव रंगीले।
सुधियाँ पिय की लाये।।

महुआ झूमें,
मौसम घूमे
गेहूँ की बाली,
यौवन चूमे।
हटे उदासी,
राग पलाशी।
सन-सन हवा सुनाये।।
आम बौराये,
टेसू इठलाये।
दूर से वंशी,
कान्हा सुनाये।
पाँव ना रुके,
कोयल कूके।
मन में टीस जगाये।।

आज पलाश रंग है बिखरे

आज नशा सा छाया है,
वासंती बयार पर।
ले भावों की अंजुली में,
आ गया हूँ द्वार पर।।
शूल चुभाती धूप ये बिखरी,
आँगन-आँगन द्वारे।
तुमलमोहरी पाँखों से चमके,
सुधियों के गलियारें।
तुम्हें शपथ है शुभदे आओ,
मेरे इस मनुहार पर।।
दिन-दिन ये परवान चढ़े हैं,
गंधों के हरकारे।
कुनकुनी सी रातों से,
पूछ रहे हैं तारें।
सपनों की इस बेला में क्यों,
बैठे नदिया धार पर।।
सिन्दुरी-सी भोर में देखो,
पंछी सब चहकारे।
रेशम-सी ये किरणें भी तो,
आकार ताने मारे।
घटती जाती उमर अनमनी,
जीवन के उतार पर।।
अमराई में उतर रहे हैं,
नेह भरे उजियारे।
चितकबरे पंखों से अपने,
उड़ते हैं अंधियारे।
आज पलाशी रंग है बिखरे,
केशरिया त्यौहार पर।।

फागुन के दिन आये

पिया को हाँक लगाये,
आओ हम होरी गायें।।
रंग बिखरे,
मौसम आया,
फागुन के,
दिन आये।
हुये पलाशी,
दिन ये सारे,
महुआ झूमे जाये।
सभी हम रंग लगायें,
आओ हम होरी गायें।।
टेसू फेकें,
रंग की धारा,
हवा उड़ाये गंध।
गुलमोहरी,
लाली ये छाई,
दूर बजे मिरदंग।।
वसंती दिन ये आये,
आओ हम होरी गाये।।
चम्पा तोरण,
सजे हैं सारे,
धूल उड़ाये गुलाल।
धरती चूनर,
पहन लजाती,
लाल हुये हैं गाल
बरगद ढोल बजाये,
आओ हम होरी गाये।।
अमराई में,
हाट लगी है,
मौसम भी बौराया।
धूप कटीली,
ताने मारे,
सूरज भी गुस्साया।
टोलियो झूमे आयें,
आओ हम होरी गायें।।

194, सांई सदन, रामनगर, खण्डवा म.प्र.
मो.97533-34219

समावर्तन की वार्षिक सदस्यता हेतु

- समावर्तन की वार्षिक सदस्यता ग्रहण करने हेतु रूपये 1500/- नियत है जो मनिआर्डर से अथवा चेक से भेजे जा सकते हैं। चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखना होगा। चेक और मनिआर्डर डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य, माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन 456010 के पते पर भेजना होगा।
- समावर्तन की वार्षिक व्यक्तिगत अथवा संस्थागत सदस्यता का शुल्क डिजिटल माध्यम से भी भुगतान किया जा सकता है। जिसके लिए बैंक डिटेल्स निम्नानुसार है।
  बैंक का नाम - आयडीबीआय, **ब्रांच का नाम -** फ्रीगंज ब्रांच, उज्जैन, खाता **क्रमांक -** 0088102000031620, **खातेदार का नाम -** समावर्तन
  आयएफएससी नं.- आयबीकेएल 0000088
- डिजिटल एवं चेक/मनिआर्डर से भुगतान करने पर तदनुसार पत्र द्वारा सूचित करने का कष्ट करें।

संपादक, समावर्तन, उज्जैन - संपर्क - 94259-15010

डॉ. योगेन्द्रनाथ शुक्ल की तीन लघुकथाएँ

सीढ़ी

एक तो हलकान कर देने वाली गरमी, 'शहीद दिवस' का लंबा-चौड़ा जुलूस और उस पर रूका हुआ ट्राफिक! 'मेरा रंग दे बसंती चोला, माए रंग दे...' गीत गाते हुए सफेद झक्क कलफदार कपड़े पहने नेता और कार्यकर्ता जा रहे थे और बस में खड़े लोग उन पर क्रोधित हो, उन्हें कोस रहे थे। चौराहे पर बढ़ता ट्राफिक देखकर, पुलिस ने सारा ट्राफिक पास की सड़क की ओर मोड़ दिया बस थोड़ा लंबा रास्ता काटती हुई उसके स्टाप पर पहुँची और वह वहाँ उतरकर दूसरी बस के इन्तजार में खड़ा हो गया। पन्द्रह मिनिट हुए होंगे कि उसे पता चला कि उस तरफ से आने वाली बस दूसरे नेता के द्वारा शहीद दिवस पर निकाले हुए जुलूस के कारण ट्राफिक में फँस गयी है। एक घंटे के पहले बस वहाँ नहीं आने वाली। यह सुनकर उसकी झल्लाहट बढ़गयी। समय गुजारने के लिए जब कुछ यात्री सामने के बगीचे की ओर जाने लगे, तो वह भी चल दिया।

पीपल के झाड़ के नीचे सीमेंट की बैंच में बैठकर वह पसीना पोंछ रहा था तभी उसका ध्यान बगीचे के बीचों-बीच लगी गाँधी प्रतिमा की ओर चला गया। कल तक जो मूर्ति पक्षियों की बीट से चितकबरी हो गयी थी वो आज चमक रही थी। उसका गला मालाओं से ढ़ँका हुआ था।...बापू आने अपना सारा जीवन देश की जनता के उत्थान के लिए लगा दिया और एक ये नेता है कि खुद के स्वार्थ के लिए उसी आम जनता को लूटने में लगे हैं। घूस से नौकरी हथियाने वाले अधिकारी भी उनसे साँठ-गाँठ कर भ्रष्टाचार फैला रहे हैं। इन दोनों पहियों के बीच में आम जनता पिसी जा रही है। मुझे ही देख लीजिए बापू !...एम.एससी. फर्स्ट डिवीजन हूँ, कई प्रतियोगी परीक्षाएँ पास कर चुका हूँ, परन्तु इन्टरव्यू में फैल कर दिया जाता हूँ। न मेरे पास घूस देने के लिए रुपये हैं और ना ही किसी बड़े नेता की सिफारिश। चारों ओर हताश होकर मैं चार हजार रुपयों में प्रायवेट स्कूल में मास्टरी कर रहा हूँ। पाँच सौ रुपये बस के पास में लग जाते हैं। पन्द्रह सौ रुपये कमरे का किराया...। एक हजार रुपये घर भेज कर बचे हजार रुपये में अपना जीवन मैं कैसे गुजार रहा हूँ, बापू मैं ही जानता हूँ। न जने क्यों उसे ऐसा लगा जैसे उसकी दुःख भरी दास्तान सुनकर बापू उदास हो गए हैं और उनकी आँखों से अश्रु टपक रहे हैं। उसका मन नहीं माना, वह बैंच से उठा और प्रतिमा के पास आकर खड़ा हो गया। उसे प्रतिमा उदास जरूर दिखी, लेकिन अश्रु झरते नहीं दिखे।

वह वहीं पर खड़े होकर बापू से फिर संवाद स्थापित करने लगा।... पहले आप दिलों में दौड़ते थे, पर अब संसद से लेकर सचिवालय तक आप एक हाथ से दूसरे हाथ में दौड़ रहे हैं। जिसके बटुए में आप विराजमान हैं, उसकी हर जगह विजय है और जिनके दिलों में आप बसते हैं, वे मेरी तरह निरीह हैं। और क्या कहूँ, बस यूँ समझ लीजिए कि देश में चारों ओर शहीदों की मूर्तियाँ लगी हैं, पर वास्तव में सरकार चलाने वाले नेताओं के लिए शहीद सिर्फ एक सीढ़ी बन कर रह गए हैं, सत्ता प्राप्त करने वाली सीढ़ी। इनकी निगाह में शहीदों की कीमत इससे अधिक कुछ नहीं!

लोगों को वापस बस स्टाप की ओर लौटते हुए देखकर उसका सोच टूटा।

बापू !कुछ अधिक कह गया हूँ तो क्षमा कीजिएगा...पर आपसे मन की बात कहकर मैं खुद को हलका महसूस कर रहा हूँ। प्रतिमा को देखता हुआ वह बस स्टॉप की ओर चल पड़ा।

बापू

''बापू! आप पृथ्वीलोक से कब आए ?''
''.....''
''बापू ! आप बहुत उदास हैं....क्या कारण है?''
''.....''
''बापू! आपने पृथ्वीलोक में ऐसा क्या देख लिया कि आप इतने अन्यमनस्क हो गए!''
''.....''
''बापू ! कुछ बताएँगे तो आपका मन हलका हो जाएगा। किस बात से आप इतने दुःखी हो गए?''
''क्या बताऊँ...! मैंने स्पष्ट कहा था कि मेरी मूर्ति कहीं नहीं लगाना, लेकिन देश में चारों ओर मेरी ही मूर्तियाँ लगी हैं। और तो और...सड़के, अस्पताल, मुद्राएँ भी मेरे नाम से...ओफ...! मुझे पीड़ा इस बात की है कि मेरे देश के लोग न तो पूरी तरह मुझे त्याग रहे हैं...न वे दिल से मुझे अपना रहे हैं....बस मेरा बेजा इस्तेमाल कर रहे हैं...!'' अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाले बापू बिलख उठे।

सफेद गुलाब

आखिरकार उसने दुकान में फ्लेक्स टाँग ही दिया। उसका फार्मूला सही बैठा। लड़के-लड़कियों की भीड़ लगना शुरू हो गई। पहले वे फ्लेक्स को पढ़ते, कुछ सोचते फिर फूल खरीदते। जैसा उसने सोचा था वैसा ही हुआ। उसे दम मारने की फुरसत नहीं मिल रही थी। दस-पंद्रह रुपये वाली गुलाब की कली वह पच्चीस रुपये में बेच रहा था। कोई मोल भाव नहीं। एक भाव! थोड़ी-थोड़ी देर में फ्लेक्स को पढ़ते लड़के-लड़कियों को देखकर उसके मन में खुशी की लहर दौड़ पड़ती।

वेलेन्टाईन स्पेशल
प्रेम की गहराई बताने के लिए - लाल गुलाब
प्रेम में अपनापन जताने के लिए - गुलाबी गुलाब
प्रेम के रिश्ते को आजीवन चलाने के लिए - सफेद गुलाब
प्रेम पर गर्व करने के लिए - नारंगी गुलाब

शाम तक सारा माल बिक गया। सिवाय सफेद गुलाब के। फ्लेक्स को उतारकर उसकी घड़ी करते हुए वह सोच रहा था...''अगली बार 'वेलेन्टाईन डे' पर सफेद गुलाब नहीं लाऊँगा लगता है इन प्रेम के पुजारियों का रिश्तों को आजीवन चलाने में जरा भी यकीन नहीं!''

390, सुदामानगर,अन्नपूर्णा रोड,
इन्दौर-452009

भाषाओं के समुद्र में कविता की लहरें

रमेश दवे

कोई कवि, कथाकार या अन्य रचनाकार अगर बड़ा या महान होता है तो अपनी रचना अर्थात अपने सृजन से। इसलिए सृजन के परिक्षेत्र में व्यक्ति बड़ा छोटा न होकर रचना महत्वपूर्ण होती है और महत्वपूर्ण रचना अपने समय, समाज और साहित्य में सार्थक हस्तक्षेप करके स्वयं अपनी अस्मिता की स्थापना करती है। अनेक प्रतिभावान कवि, लेखक आत्म-नेपथ्य में अदृश्य रहते हैं लेकिन वे जब दृश्य या प्रत्यक्ष होते हैं तो एक सुखद अनुभूति इसलिए होती है कि वे कुछ नया लेकर आए हैं, अलग और अच्छा लेकर आए हैं। यह अलगपन ही उनकी रचना का केन्द्रीय बिन्दु होता है।

हाल ही एक कविता संग्रह 'भाषाओं के समुद्र में' पढ़ने को मिला। युवा कवि सुधीर मोता को संभवतया बहुत कम लोग कवि के रूप में जानते हैं लेकिन साहित्य और कला-कार्यक्रमों में उनकी उपस्थिति से उनकी सर्जक-प्रकृति का आभास अवश्य होता रहा है। मुझ पर आरोप है कि मैं किसी भी रचना या व्यक्ति को लेकर समीक्षा कर देता हूँ, इसलिए मुझे अधिकांश साहित्य कर्मी और बौद्धिक मीडियाकर श्रेणीका उपहार देते रहे हैं लेकिन मेरी धारणा यह है कि कोई भी रचना अपनी गुणवत्ता के आधार पर आकर्षित करती है, न कि पहचान, व्यक्तिगत सम्पर्क या संबंधों पर कोई कवि अच्छा या बुरा नहीं होता, बल्कि उसकी रचना ही उसे अच्छा या बुरा बनाती है।

सुधीर मोता की रचना का प्लस पाइंट यह है कि वे भाषाओं के समुद्र में कविता की रचना स्पेस खोज रहे हैं। पृथ्वी आकाश तो अनेक कविताओं में अपने श्रेष्ठतम में रचना विषय बने हैं, समुद्र, नदी, जल भी कविता विषय रहे हैं लेकिन भाषाओं के समुद्र में उतर कर रचना को उसके सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रकट करना न केवल भाषा के प्रति संवेदन है बल्कि भाषा की व्याकरणीय संरचना के साथ कवि के भाषा सामर्थ्य का भी प्रमाण है। मोता की इन कविताओं में वानस्पतिक ताजगी है, पुष्पात्मक सुगंध है और मनुष्यात्मक संवेदना सुधीर मोता की काव्य संवेदना के तीन स्तर उनकी कविताओं में दिखाई देते हैं - एक उनकी भाषा संवेदना, दूसरी उनकी पिता के प्रति संवेदना और तीसरी है उनकी नींद को लेकर एक मनोवैज्ञानिक संवेदना। भाषा के प्रति मोता अत्यधिक सजग हैं और पाँच कविताओं में कहते हैं -

भाषा 1- भाषा एक हथियार हो सकती है/ कभी इस्तेमाल करते हुए/ कभी सजावट के लिए/ दीवार पर टँगी/ सलवार की तरह/

भाषा 2- यह हमारी भाषा का घर है/ भाषा में रहना/ जीवन में रहना है।'

भाषा 3- दोस्तो/ भाषा में नुक्स न निकालना/ कुछ मनचाहा खरीदने के लिए/ अपव्यय तो करना पड़ता है/

भाषा 4- हम स्वयं../ भाषा के विशाल समुद्र में रहते हैं/ प्रेम में कुण्ठा में घृणा में/ प्रसवानुभवों में/

भाषा 5- यह भाषा का अन्तर है या अंतर की भाषा है/ मैं पूछता हूँ अपने से/ यह भाषा का अंतस है/ या अंतस की भाषा है/

एक भाषा के प्रति जायज अपनत्व रखने वाला कवि जब कविता में भाषा की प्रतिष्ठा करता है तो लगता है कवि केवल कविता में भाव व्यंजना ही नहीं करता, बल्कि भाषा की आंतरिक शक्ति की भी व्यंजना करता है जो रूप, वस्तु, गुण और व्यवहार के व्याकरण से निर्मित होती है।

इसी प्रकार नींद को लेकर मोता का मनोविज्ञान इस प्रकार प्रकट होता है -

नींद 1- विद्वान भाषण दे रहे हैं/ या कलाकार संगीत की स्वर लहरियाँ/ बिखेर रहे हैं/ क्यों मुझ तक आकर लौट जा रही है। ये तरंगे और नींद के देवता के विषैले बाण/

नींद 2 - विवाह नामक संस्था/ का तिरस्कार है सखी नींद/

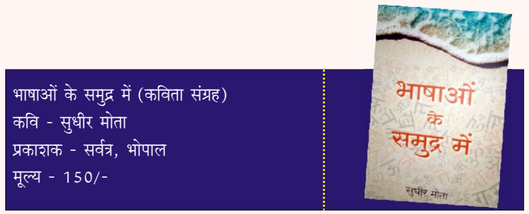

भाषाओं के समुद्र में (कविता संग्रह)
कवि - सुधीर मोता
प्रकाशक - सर्वत्र, भोपाल
मूल्य - 150/-

नींद 2- कविता में स्थूलता के साथ मोता कुछ हद तक भौतिक जीवन के प्रति सेण्टीमेंटल हो गए हैं। शायद यह उनके अनुभव से उपजा मनोविज्ञान हो। मोता पिता के प्रति किस प्रकार आकृष्ट हैं -

पिता 1 - *पिता के लिए इतना धीमा हो चुका है/ समय/ कि बार बार पूछते हैं/ साथ में अब भी पहनते हैं घड़ी/*

पिता 2- *पिता बड़े हो रहे हैं/ आज उन्होंने थोड़ा सा अन्न लिया/ आज उन्होंने कुछ शब्द स्पष्ट उच्चारे/...चहक कर बताता है पूरा परिवार/ एक दूसरे को/ पिता ने आज यह किया/ आज वह किया/*

मोता ने पिता की वृद्ध इमेज के साथ उनके इमोशनल या भावुक संवेदन को जिस प्रकार बाल सुलभ मुद्राओं से जोड़ा है, यह उनका एक नायाब प्रयोग कहा जा सकता है। मोता की कविताओं में इमेजेस का प्रयोग अत्यन्त ही चौंकन्नेपन से हुआ हैं वे 'अतिरिक्ति' शीर्षक कविता में कहते हैं : *''एक अतिरिक्त योग्यता के बिना/ अकेले शून्य की तरह है हर कोई/ बिना नजर में आए परित्यक्त खड़े जीव की तरह/*

आगे उनकी संवेदना एक प्रकार से जयवादी भी प्रतीत होती है - *नहीं है जिनके पास/ जनके सिवा धन/ कला के सिवा कला कोई और पद दायित्व के सिवा पद/ उनके भीतर/ किसी मासूम पुस्तक में/ दीमक की तरह/ घर लौटते ही/ अचूक औषध के फाहे को तैयार लिए/ बाहें पसारे/ बेटियों की तरह स्वागत करती हैं/ कविताएँ/*

'अतिरिक्त' का अतिरिक्त होना कितना महत्वपूर्ण हो उठा है इन पंक्तियों में। आगे 'सितार' कविता में मोता अपनी संगीत-रूचि प्रकट करते हैं जो जीवन मर्म से सम्बद्ध है - *मेरे विलंबित से पता चले/ कहाँ ठहरा हूँ/ मींड कहीं कह न दे कहाँ ठिठका हूँ। गत में छुपा है विगत मेरा/ कहीं उजागर न हो जाए दुर्गत अपनी/*

एक और कविता ''शरारत' में मोता के मन की बात इस प्रकार खुलती है -

थोड़ी उदासी में मन है/ गंभीर आदमी का/ मन हँसने को करता है/ मुस्कुरा पाता है/ मुस्कान में अट्टहास है/ अटटहास में चुप्पी है/... और आगे धूप का पेड़ है/ मलाल की ओस जिस पर/ चढ़ी हुई बेल की तरह/ गिलास भर ओस पीता है/ सुधीर ने विषय अनेक चुने हैं - प्रजातंत्र, ऋणमुक्ति, बचत, शोकसभा,रैली, सौदागर, हिटलर मार्ग अखबार, आज कल ये विषय हमारे दैनिक एवं भौतिक जीवन से जुड़े हैं - जिनमें मोता ने विडम्बना और व्यंग्य की मुद्रा अपनाई है। मोता ने जहाँ अपने वस्तु जगत का अतिक्रमण कर भाषा, अतिरिक्त और शरारत जैसी कविताओं में जिन बिम्बों से अपना काव्य शिल्प रचा है, उससे उनमें एक ऐसे कवि की आभा प्रकट होती है जो इन कविताओं को पढ़ने की माँग करती है। मोता जहाँ जहाँ स्थूल जगत में गए है वहाँ उनकी कविता के रूपक भटके है कविता कमजोर भी हुई है लेकिन कोई भी कवि संपूर्ण सर्वश्रेष्ठता का दावा तो नहीं कर सकता। इसलिए यह कहा जा सकता है 'भाषाओं के समुद्र में' मोता का भले ही एक ऐसा संग्रह हो जो भाषा को संबोधित है मगर उसकी चराचर चेतना भी मोता की संवेदना का फलक बनती है। इसलिए यह संग्रह अपने समय के युवा कवियों के बीच एक सार्थक उपस्थिति की तरह है। स

मो.94065-23071

देखते ही देखते - ये क्या हो गया ?

डॉ. वासुदेवन शेष

गजलकार श्री सदाशिव कौतुक का गजल संग्रह 'देखते ही देखते' एक अत्यन्त ही रोचक, सारगर्भित व काव्य के विशेष गुणों से युक्त है। इस गजल संग्रह में हिन्दी के शब्दों के अतिरिक्त उर्दू, फारसी के शब्दों का प्रयोग हुआ है। ये गजले अत्यन्त ही प्रभावी, हृदयग्राही तथा अपने समय को परिभाषित करते हुए उनका प्रतिबिंब प्रस्तुत करने में दर्पण का कार्य करने वाली हैं।

आज धर्म, सम्प्रदाय और वर्ग की आपस में मतभिन्नता तथा मत विषमता समाज को कहाँ ले जा रही है उसको मुखरित करने तथा शृंगार, प्रेम प्रसंगों व वात्सल्य को भी बड़ी ही कुशलता से प्रतिबिम्बित करती हुई कौतुक जी की गजलें अत्यन्त ही ख्यातिलब्ध तथा विशेष रूप से सम्मानित कवियों एवं गजलकारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान स्वयं ही बना देती है।

देखिये पंक्तियाँ-

अरमां जीने का तार-तार हो गया / सपना सामंतवाद का साकार हो गया।।
पेट में उनके पसरी थी ऐसी भूख/ गरीब पूँजीपति का आहार हो गया।।

गजलकार ने इन पंक्तियों में आज की सही तस्वीर खींची है। आज गरीब-गरीब है और पूँजीपति फिर बड़ा पूँजीपति बनकर समाज के इस तबके के साथ खिलवाड़ कर रहा है और सरकार हाथ पर हाथ धरे तमाशा देख रही है।

जिस देश में वैदिक काल में नारी को पूजा जाता हो तथा वह सम्माननीय रही हो, वहाँ आज उस नारी की अस्मत खतरे में है। उसके साथ कुकृत्य हो रहा है, लेकिन समाज मौन है। सत्ता भी कुछ नहीं कर पा रही है। ये पंक्तियाँ देखें-

औरत के हौंसलों ने सजाई है ये दुनिया,/ उस औरत की अस्मत बचाने का वक्त है।

गजलकार की वेदना सही है कि आज हमें औरत के सम्मान के लिए एकजुट होना होगा।

देश के लिए जो जांबाज अपनी जान की बाजी लगा देते हैं उनके बलिदानों की अहमियत को दरकिनार करते हुए आज के कुछ लोग ऐसे गद्दार हो गए हैं जिनका पर्दाफाश करना निहायत जरूरी है। उनकी पंक्तियाँ देखें-

माँ तेरे लाल गद्दार हो गए /गद्दारी की हद से पार हो गए।
बेटा कहलाने का उनको हक नहीं है / वतन को तोड़ने का औजार हो गये।।

गजलकार ने संकीर्ण मानसिकता रखने वालों पर तीखा प्रहार किया है-

संकीर्णता का दाह-संस्कार होना चाहिए / हर सोच का बड़ा आकार होना चाहिए।
बहत्तर बरस हुए आजादी आए को /दूर अब राह का अँधकार होना चाहिए।।

आजकल हम पाते हैं कि किसी न किसी प्रदेश में घरों में बस्तियों में हथियार छिपाए जाते हैं और कहीं-कहीं तो हथियार के कारखाने भी पाए गए हैं। उनको चेताते हुए कवि लिखते हैं-

हँसते-खेलते साथ रहे हैं मस्ती में /फिर क्यों हथियार चमक रहे हैं बस्ती में।।

ग़ज़ल किसी एक दिल की कहानी नहीं होती वह हर दिल की कहानी होती है। गजल का शायर अगर वह सचमुच का शायर है तो वह जिन भावों की अभिव्यक्ति करता है उसमें उसके दिल की, आपके दिल की, मेरे दिल की कहानी छिपी रहती है। आजकल सभी को मालूम है कि शहरों में इतना प्रदूषण हो गया है कि हवा भी जहर लगती है। शहर में गगनचुंबी इमारतों ने घर कर लिया है। प्रकृति भी परेशां है, इंसान तो इंसान पशु-पक्षी के लिए भी कोई ठोर-ठिकाना नहीं है। वृक्ष काटकर फ्लाईओवर बनाये जा रहे हैं। पेड़ काटकर सड़कों को चौड़ा किया जा रहा है। पक्षियों के लिए आशियाना नहीं। पंथी को छाँव नहीं। कवि की इस वेदना को इन पंक्तियों में देखिए-

देखते ही देखते (ग़ज़ल संग्रह)
सदाशिव कौतुक
अयन प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य - 200/-

शजर पे घोंसला नजर आता क्यूँ नहीं /भोर में भँवर अब गुनगुनाता क्यूँ नहीं।।
सूख रही है धरती तप रहा है सूरज /मंद झोंका पवन का सुहाता क्यूँ नहीं।।

प्रेम और शृंगार की अनेकरूपा वृत्तियों में से लौकिक रूप अलौकिक सौन्दर्य राग-विराग, मिलन-विरह, याद-विषाद, ख्वाब-ख्याल, गम, खुशी आदि की गहन अनुभूतियों के संस्पर्श उनकी गजल में असली गजल की संलिप्तता की समष्टि करते हैं। इनकी पंक्तियाँ-

खुश्बू भरी हवा आने दो / मौसम को महक जाने दो।।
अभी मत आओ मेरी जान / महफिल तो सज जाने दो।

कवि ने आज के युग में बुजुर्ग माता-पिता को उनके बच्चो से तिरस्कार करते हुए पाए गए हैं- उनकी वेदना इन पंक्तियों में स्पष्ट झलक रहा है- वे युवाओं को संदेश देना चाहते हैं कि अपने बड़े-बूढ़ों का सम्मान करें जिनकी छत्रछाया में बच्चे पले बढ़े।

खुदा उसे ऐसी निगेहबानी दें /वो माँ-बाप को दाना पानी दे।

इस सम्बन्ध में मुझे किसी शायर की ये लाईनें याद आ रही हैं-

बाप ने खोदी नींव / माँ ने डारी गार /बाद में बेटे ने खड़ी कर दी दीवार।।

कवि ने समय की वास्तविकता को पुरजोर के साथ बयाँ किया है, बानगी देखिए-

शहीदों की तपस्या फैल हो गई / रोशनी अँधेरों की रखैल हो गई।।
मेहनती भूखा दर-दर भटक रहा / रिश्वत खोरी की रेलमपेल हो गई।।

आज हमारे देश में माफिया का राज है। बालीवुड माफिया से लेकर भू-माफिया, तथा खनन क्षेत्रों में माफिया बड़ी तेजी से अपने पंख फेला रहा है और देश के हर क्षेत्र में दखल देकर अपना काम सिद्ध कर रहा है। धन का लालच देकर हरेक के ईमान को खरीद रहा है। जो दृश्य, जो कार्यकलाप जो जीवन मूल्य हम रोजमर्रा की जिंदगी में देखते और महसूस करते हैं, उन्हें कौतुक जी ने जिस बड़ी सहजता से जादुई शब्दों में पिरोया है ये तो सिर्फ महसूस ही किया जा सकता है। उनकी ग़ज़लें पढ़ते हुए सोचा कि कुछ पंक्तियों को चिह्नित कर दूँ जो उद्धृत करने के काम आएगी, लेकिन जब काम शुरू किया तो बहुत परेशानी में पड़ गया, क्योंकि लगभग हर गजल के हर शेर पर निशान लग गया। अब उलझन में हूँ कि किस गजल के किस शेर के बारे में लिखूँ। फिर भी जो गजलें मुझे पसंद आयीं उनकी बानगी पेश कर रहा हूँ।

धर्म और समाज की कतिपय कटु सच्चाइयों को उजागर करती हुई उनकी कुछ पंक्तियाँ विशेष रूप से अपनी छाप छोड़ती है और अपने आपको सुधारने पर विवश करती है-

इक भाई तो प्यार से पुकारता है / दूजा उसे सर पे पत्थर मारता है।।
इतना गौर कर कि मालिक एक है सबका
कोई राम कोई रहीम पुकारता है।

आज धर्म और जाति के नाम पर समाज में भ्रम फैलाया जा रहा है और सदियों से बंधुत्व की भावना के साथ मिल-जुलकर कर रहने वालों को आज न जाने क्या हो गया। पत्थर बरसाये जा रहे हैं। हमारा देश 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को लेकर सदियों से चल रहा है। हमारी युवा पीढ़ी को इसे हर

हालत में बचाना होगा। कवि की उपरोक्त पंक्तियों का भावार्थ यही है जिसकी आज जरूरत है।

गजलकार की इन पंक्तियों में मौजूदा सरकार की नीतियों पर तीखा व्यंग्य कसा है।

भाई खेल हैं खुल्ला ये, /दो दिन हल्ला-गुल्ला ये।।
काम करेंगे छोटा ही /खूब करेंगे हल्ला ये।।

गजलकार ने जहाँ सामाजिक गजलों की रचना की है वहीं शृंगार और रोमांचित करने वाली गजलें भी लिखी हैं- एक बानगी देखें-

अपनी आँखों में तेरा ख्वाब रखता हूँ
समंदर की हर लहर का हिसाब रखता हूँ।
बड़ा कठिन है चंचल मन पे काबू पाना
पर लगाम इस जुबाँ पे जनाब रखता हूँ।

शायर औरत की अहमियत पर भी अपना इजहार करते हुए लिखते हैं-

किसने होठों पे हँसी और प्यार दिया होगा
शायद पहले औरत ने ही प्यार किया होगा।।

औरत ने यह दुनिया बसायी, इसे हरा-भरा गुलशन दिया, लेकिन आज वही औरत शोषण और उत्पीड़न का शिकार हो रही है। यह स्थिति भयावह है। इसे बदलना होगा। औरत केवल औरत ही नहीं एक माँ, पत्नी, बेटी, बहन और बहू है। भगवान् शिव को अर्द्धनारीश्वर भी कहा जाता है। उसे उसका सम्मान मिलना ही चाहिए जिसकी वो हकदार है।

गजलकार ने इन पंक्तियों में आज की स्थिति का उकेरा है जो सही तस्वीर प्रस्तुत करती है- जिससे सबक भी लेना चाहिए-

मंदिर-मस्जिद-धर्म ध्वजा-मरघट-श्मशान बनेगा
इन बुनियादों पर ही क्या हिन्दुस्तान बनेगा।।
हवा पानी साफ नहीं है वतन के जनजीवन में
कुपोषण की गिरफ्त में कैसे देश महान् बनेगा।।

अंत में यही कहना चाहूँगा कि सचमुच आज का हर इंसान जो आम आदमी की हैसियत से अपनी जिंदगी जी रहा है, वह समस्याओं के बोझ से पूरी तरह दबा हुआ है। उसकी जो आशाएं अपेक्षाएँ और आकांक्षाएँ हैं, उसके अपने स्वप्न हैं, उन्हें वो अपने सीमित साधनों में पूरा नहीं कर पा रहा है। लेकिन कविता/ग़ज़ल का काम निराश और उदासीन व्यक्ति के हृदय में भी किसी आशा और उम्मीद की किरण को जगाने का काम है। इन अच्छी ग़ज़लों और ग़ज़लकार को बधाई।

जी-4, अक्षय फ्लैट्स, 53 ईरूसूपा स्ट्रीट
ट्रिपलीकेन, आइस हाऊस चैन्नई -600005
मो. 9444170451

संस्मरण में कवि स्व. नईम और उनका शहर देवास !

शशि भूषण बडोनी

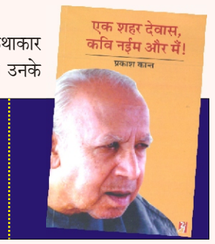

एक शहर देवास, कवि नईम और मैं (संस्मरण)
प्रकाश कांत
अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद
मूल्य : रू.185/-

'एक शहर देवास, कवि नईम और मैं' यह है उस पुस्तक का नाम जो कथाकार प्रकाश कांत ने दिवगंत कवि नईम पर संस्मरण स्वरूप लिखी है। नईम जी उनके शिक्षक और अभिभावक दोनों रहे हैं। यह पुस्तक कवि नईम जी पर तो केन्द्रित है ही साथ ही इसमें पिछली सदी के उत्तरार्द्ध के देवास शहर और उसके विभिन्न सृजनधर्मियों का भी विस्तार से उल्लेख है। इसके अलावा विभिन्न अवसरों पर देवास आये जन कवि बाबा नागार्जुन, श्रीनरेश मेहता, डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन, कमलेश्वर इत्यादि महत्त्वपूर्ण रचनाकारों का भी यथास्थान जिक्र है। जिससे नईम जी के परिचय संसार की व्यापकता का पता चलता है। उनके इस परिचय संसार में तमाम तरह के छोटे-बड़े सृजनधर्मियों के अलावा दूसरे कई प्रकार के लोग भी बराबरी की हैसियत से शामिल रहे थे। पुस्तक में नईम जी से जुडे कई तरह के रोचक प्रसंगों के अलावा कुछ अन्य प्रसंग भी महत्त्वपूर्ण है। जैसे, जनकवि नागार्जुन का लेखक और उसके मित्रों को उज्जैन रेल्वे स्टेशन के पुल पर बैठकर अपनी प्रसिद्ध कविता 'अमल-धवल गिरि के शिखरों पर' सुनाना! नईम जी जाने-माने कवि तो थे ही, साठ साल की उम्र होने के बाद उन्होनें एक नये कलानुशासन काष्ठकला में भी कार्य शुरू करते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण काष्ठकृतियो का निर्माण भी किया था। उनकी अधिकांश काष्ठकृतियाँ एब्सट्रेक्ट शैली में थीं। जिनकी मुम्बई-दिल्ली जैसे महानगरों में प्रदर्शनियाँ भी आयाजित हुई थीं। किसी रचनाकार के एकाधिक कलानुशासन में काम करने के मुद्दे पर भी नईम जी के प्रसंग में रवीन्द्र नाथ टैगोर, राम कुमार, महादेवी वर्मा इत्यादि के उदाहरण सामने रखते हुए विचार किया गया है। प्रकाश कांत पाठक को पूरा देवास शहर घुमाते हुए नईम जी के बारे में कई छोटी-बड़ी बातें सुनाते चलते है। जैसे, उनका किसी के भी यहाँ कभी भी अधिकारपूर्वक पहुँच जाना, रिश्तों में बिल्कुल अनौपचारिक होना, खुलकर ठहाके लगाना इत्यादि! इसके अलावा,बोलने-लिखने में उनकी महीन व्यंग्यात्मकता,अनवरत किया गया पत्राचार, उनकी गम्भीर अध्ययनवृत्ति, उनका समृद्ध पुस्तकालय वगैरह के बारे में भी पुस्तक काफी कुछ बताती है।

पुस्तक के एक हिस्से में नईम जी की कविता पर चर्चा है। हालाँकि, यह चर्चा अगर थोड़े और विस्तार से की गयी होती तो नईम जी के नये पाठकों के लिए ज्यादा मददगार रहती। और उनके बतौर एक कवि उनके रचनात्मक अवदान को भी सामने लाती। वैसे,पुस्तक बुनियादी तौर पर उनके कृतित्व पर ही केन्द्रित पर रखी गयी थी फिर भी एक समर्थ और बड़े कवि होने के नाते उनकी कविता को और ज्यादा नजदीक से जानने-समझने का अपना एक आकर्षण तो रहना ही था। इस पुस्तक का आंरभ लेखक ने इन शब्दों से किया है, 'मै नईम, जन्म से मुसलमान, कर्म से नहीं।' ये नईम जी थे। बाद में इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि नईम जी ने पहले दिन क्लास में अपना परिचय जिस तरह से जन्म से मुसलमान, कर्म से नहीं के रूप में दिया था उसका अर्थ उस वक्त तो 'ठीक से समझ नहीं पाया था लेकिन बाद के तमाम सालों मे जरूर उनकी कही बात के अर्थ खुलते रहे। अपनी चालीस पैंतालीस साल की निकटता मे उन्हें न कभी रोजे रखते देखा और न मस्जिद जाते। ईद जरूर मनाते थे। ठीक जिस तरह दिवाली वगैरह मनायी जाती है। बहरहाल, ऐसा किसी विद्रोही तेवर के चलते नही किया। बल्कि अपने विश्वास-अविश्वास के चलते या किसी ईश्वरीय सत्ता मे भरोसा न होने से किया। कभी दरगाहो, खानकाहों पर भी नही गये। लेकिन यह भी सही है कि अपने विश्वास-अविश्वास को उन्होने कभी घर के बाकी लोगों पर नही लादा। दीदी रमजान के रोजे रखती रहीं और गुड़िया भी। इस मामले मे वे जनतांत्रिक थे।'

पुस्तक में लेखक द्वारा नईम जी का काफी मुश्किलों से हासिल किया गया महत्त्वपूर्ण साक्षात्कार भी दिया गया है। नईम जी किसी भी तरह का इण्टरव्यू-साक्षात्कार वगैरह देने के लिए तैयार नही होते थे। दरअसल वे अपनी रचना और रचनाकर्म पर अलग से बात करना जरूरी नहीं समझते थे। इससे बचते और ज्यादातर साफ और सीधा इंकार कर देते थे। ऐसे में गुड़िया (नईम जी की बेटी) के सहयोग से उनकी अस्वस्थता के दिनों मे टुकड़ों-टुकड़ों में उनका जो साक्षात्कार हो सका, वह इस पुस्तक मे है। जो इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि वह उनकी कविता के अलावा अन्य कई तरह की चिन्ताओं को स्पष्ट करता है। पुस्तक में विभिन्न अवसरों पर लिए गये कई श्वेत-श्याम चित्र भी शामिल हैं। जिनमें नईम जी श्रीनरेश मेहता, डॉ.शिवमंगलसिंह सुमन, गुलजार, चन्द्रकान्त देवताले, बशीर बद्र इत्यादि जैसे महत्त्वपूर्ण रचनाकारों के साथ हैं। इसके अलावा उनकी काष्ठकृतियों और हस्तलिपि के छायाचित्र भी हैं। कुल मिलाकर यह पुस्तक एक पुराने शहर, उसके सांस्कृतिक परिदृ य और उसके बाशिन्दे रहे स्व. नईम जी जैसे एक बड़े कवि के बारे में बहुत कुछ बताती है। मूलतः पुस्तक नईम जी पर केन्द्रित है और उन्हें ठीक से जानने-समझने में मदद करने की काफी हद तक कोशिश करती है।

मो. 0410550100

श्रद्धांजलि

कृष्ण बलदेव वैद आप कहाँ हैं

रमेश दवे

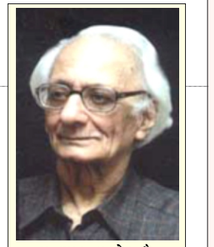

स्व.कृष्ण बलदेव वैद
जन्म : 27 जुलाई 1927
निधन : 06 फरवरी 2020

वैद साहब, आप कहाँ हैं?
कहीं नहीं
कहीं नहीं का मतलब?
जहाँ तुम खोज रहे, वहाँ नहीं।
तो कहाँ खोजें आपको?
स्वयं सोचो।
क्या टेक्सास डलेस अमेरिका में?
नहीं।
क्या आईआईसी या वसंत कुंज में?
नहीं।
क्या हेनरी जेम्स के पास?
उससे तो मुक्त हो चुका हूँ!
तो क्या जेम्स ज्वायस और सेम्युअल बेकेट के पास?
नहीं, उन्हें मैंने अपनी भाषा में विलीन कर दिया है!
तो, बताओ ना वैद साहब, कहाँ हैं आप?
कहा ना, कहीं नहीं, या आपके ही आसपास!
आसपास का क्या मतलब?
असंख्य नहीं, केवल संख्य दिलों के पास?
ये संख्य दिल कहाँ हैं?
सोचो, सोचो, एक राइटर के संख्य लोग कहाँ और कौन हैं।
अच्छा तो आपका मतलब है संख्य लोगों को तलाशें?
नहीं! ये संख्य लोग मिलेंगे मेरी किताबों में!
कौन सी किताबें?
देखो उसका बचपन, देखे वे किस्से जो उसका बयान हैं।
बस इतना ही?
नहीं! खोजो-दर्द ला दवा में, नसरीन के साथ/ एक नौकरानी की डायरी में, हाँ हाँ, डायरी में, /गालिब के अशआर की छोटी सी लकीर में / मेरी डायरी के उनवानों में, मेरे नाटकों और उपन्यासों में /मेरी कहानियों में।
वैद साहब! इतना वक्त किसके पास है?
तो फिर मत खोजो, कोई मजबूरी तो नहीं ना।
नहीं, वैद साहब खोजना तो पड़ेगा ही!
कैसे! कहाँ? कब ?
आप छह फरवरी की सुबह एकदम अदृश्य हो गए, क्यों?
इसलिए कि मेरा लिखना बंद हो गया।
आप छह फरवरी को कहीं थे?
था तो खुद अपने ही पास। बस मुझे लगा, मैं अब
अपना पास भी और अपना साथ भी छोड़ दूँ?
ऐसा कब लगा?
जब लिखने की बेचैनी ने साथ छोड़ दिया।
अच्छा तो अब इस अनंत विश्राम से मुक्त होकर आप हमें क्या कभी मिलेंगे?
मिलना शरीर से तो संभव नहीं, शब्द से ही संभव है।
शब्द कहाँ हैं? कौन से शब्द?
प्रश्न बेकार हैं! किताबों में शब्दों के बीच जाओ!
वहाँ क्या मिलेगा?
वहीं मिलूँगा मैं!

कृष्ण बलदेव वैद एक ऐसे कथाकार और नाटककार थे जिन्होंने हिन्दी भाषा को नया शिल्प दिया, नई ऊर्जा दी, उत्तर आधुनिक विखंडनवादियों को बता दिया कि संरचनावाद को नकार कर भी भाषा को उसके नए प्रयोगों के साथ जिन्दा कैसे रखा जा सकता है। एक अद्वितीय हिन्दी कथाकार जो न प्रेमचंद की परम्परा में था न निर्मल वर्मा की निरन्तरता में। वर्ष 1927 के जुलाई मास में जन्में वैद साहब चले गए- हिन्दी का एक रूप बेरौनक हो गया। जाते-जाते वैद साहब क्या कह रहे होंगे, पता नहीं मगर उन्होंने एक बार मुझसे यह कहा था कि मुझ पर कई लोगों ने लिखने को कहा था। किसी ने नहीं लिखा। तुमसे मेरा परिचय भी नहीं था। फिर भी तुमने लिखा तो मुझे लगा कि शब्द की इज्जत करने वाले लोग अभी हैं।

'समावर्तन' की सादर श्रद्धांजलि!

वार्षिक घोषणा

समाचार-पत्र का नाम	: समावर्तन
भाषा जिसमें प्रकाशित किया जाता है	: हिन्दी
प्रकाशन की समयावधि	: मासिक
सम्पादक का नाम	: श्रीराम दवे
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: 'माधवी' 129 दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.)
प्रकाशक का नाम	: अजय भट्टाचार्य
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: 'माधवी' 129 दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.)
मुद्रणालय जहाँ मुद्रण होता है	: आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)

उपर्युक्त समस्त जानकारी सही दी गयी है।

अजय भट्टाचार्य
स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक

पुस्तकें मिलीं

इस दशत में एक शहर था (उपन्यास)
अमिताभ मिश्र
बोधि प्रकाशन, जयपुर-302006
मूल्य : रू.150/-

भारतीय नाट्य परम्परा और आधुनिकता
भारतरत्न भार्गव
नयी किताब प्रकाशन,
नयी दिल्ली-110002
मूल्य : रू.295/-

खिड़कियों से झांकती आँखें (कहानी संग्रह)
सुधा ओम ढींगरा
शिवना प्रकाशन, सीहोर-466001
मूल्य : रू.150/-

नाच-गान (कहानी संग्रह)
उर्मिला शिरीष
शिवना प्रकाशन, सीहोर-466001
मूल्य : रू.160/-

वारिसों की जुबानी (रेखाचित्र)
संपादक : गीताश्री
शिवना प्रकाशन, सीहोर-466001
मूल्य : रू.200/-

निष्प्राण गवाह (उपन्यास)
कादम्बरी मेहरा
शिवना प्रकाशन, सीहोर-466001
मूल्य : रू.125/-

विचार और समय (आलेख)
सुधा ओम ढींगरा
शिवना प्रकाशन, सीहोर-466001
मूल्य : रू.150/-

प्रेम की उम्र के चार पड़ाव (कविताएँ)
मनीषा कुलश्रेष्ठ
शिवना प्रकाशन, सीहोर-466001
मूल्य : रू.250/-

कथा-समय (दस्तावेजी लघुकथाएँ)
संपादन : अशोक भाटिया
अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली-110032
मूल्य : रू.300/-

'समकालीन ग़ज़ल और विनय मिश्र' पुस्तक का लोकार्पण

बरेली। गत दिनों वरिष्ठ कवि-आलोचक श्री श्रीधर मिश्र के आतिथ्य, डॉ.रहमान मुस्विर (नई दिल्ली) तथा दिनेश कुमार (इलाहाबाद) के विशिष्ट आतिथ्य में युवा आलोचक डॉ.लवलेश दत्त द्वारा संपादित कृति 'समकालीन ग़ज़ल और विनय मिश्र' का लोकार्पण किया गया। समारोह के दौरान पुस्तक विमर्श में प्रो.जे.पी.व्यास ने कहा कि विनय मिश्र की ग़ज़लें अपने अतीत से संवाद करती हुई अपने वर्तमान को भी कुरेदती है।

इस अवसर पर विनय मिश्र ने हिन्दी कविता परंपरा में ग़ज़ल पर अपनी बात रखते हुए अपनी ग़ज़लों का पाठ किया। आयोजन में कई युवा कवि, लेखक, समाजकर्मी और रंगकर्मी उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन रामचरण राग और धन्यवाद ज्ञापन डॉ.रमेश चंद खंडूरी ने किया।

प्रस्तुति -' रामचरण 'राग'

डॉ.गरिमा दुबे को सूर्यकांत त्रिपाठी निराला सम्मान

नईदिल्ली। साहित्यकार डॉ.गरिमा संजय दुबे को भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति के संरक्षण-संवर्धन के लिए समर्पित संस्था सर्वभाषा ट्रस्ट नई दिल्ली द्वारा उनकी प्रथम कृति कहानी संग्रह 'दो ध्रुवों के बीच की आस' के लिए सूर्यकांत त्रिपाठी सम्मान 2019 से सम्मानित किया गया। यह सम्मान उन्हें संस्था द्वारा गांधी शांति प्रतिष्ठान में आयोजित कार्यक्रम में प्रदान किया गया।

व्यंग्योत्सव में व्यंग्य चिंतन

उज्जैन । उज्जैन में दो दिवसीय व्यंग्योत्सव का आयोजन स्थानीय कालिदास अकादमी में हुआ जिसमें देश भर के करीब चालीस व्यंग्यकार, व्यंग्य पर चिंतन के लिए जुटे। बीसवीं सदी के व्यंग्य पर चर्चा में बोलते हुए प्रख्यात व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय ने कहा कि व्यंग्य को आज रेखांकित किया जा रहा है और टेपा सम्मेलन के जरिये शिव शर्मा जी ने व्यंग्य को जीवंत किया, व्यंग्य को सम्मानित किया और व्यंग्य को प्रतिष्ठित भी किया। व्यंग्य महोत्सव के अवसर पर उनकी स्मृति को नमन करते हैं, उनके योगदान को रेखांकित करते हैं। शैलेंद्र शर्मा ने कहा कि व्यंग्य अब विधा बन गई है। उज्जैन में व्यंग्य परम्परा की शुरूआत पण्डित सूर्यनारायण व्यास से प्रारंभ होती है। शरद जोशी और डॉ शिव शर्मा ने इसी व्यंग्य परम्परा को समृद्ध किया। सूचना बहुलसमय में व्यंग्यकार को दुर्गम समय में कार्य करना होगा। व्यंग्यकार स्वयं के आलोचक बनें और आत्मलोचना करें। श्री हरीश पाठक ने कहा कि व्यंग्य में शब्दों के लिहाज से कमी आई है मगर मारक क्षमता बढ़ी है। व्यंग्यकार डॉ पिलकेन्द्र अरोरा ने कहा कि व्यंग्य के तीर्थ में, उज्जयिनी में आप उपस्थित हैं। यह सदी परिवर्तन की सदी है, बाजारवाद की सदी है। विकास और तकनीक क्रांति का समय है, जीवन की मर्यादायें भंग हो रहीं है। ऐसे में व्यंग्य का महत्व और प्रासंगिकता स्वयमेव बढ़जाती है। डॉ देवेंद्र जोशी, लालित्य ललित, बलदेव त्रिपाठी, रणविजय राव, शशांक दुबे, वंदना गुप्ता, दिनेश दिग्गज, डॉ हरीशकुमार सिंह आदि ने भी अपने विचार व्यक्त किये। डॉ शिव शर्मा स्मृति व्यंग्य पाठ में 22 व्यंग्यकारों ने व्यंग्य पाठ किया।इस अवसर पर सांध्य दैनिक उज्जैन सांदीपनि के ,उज्जैन की व्यंग्य परम्परा पर केंद्रित विशेष अंक का विमोचन अतिथियों ने किया।

- डॉ हरीशकुमार सिंह, उज्जैन

समावर्तन के लघुकथा स्तंभ 'घरोंदे' के लिए रचनाएं आमंत्रित

समावर्तन के द्वैमासिक स्तम्भ घरोंदे हेतु लघुकथाकारों से उनकी दस-बारह लघुकथाएं (जो छोटी, सारगर्भित और प्रभावी हों) लघुकथाकार का परिचय तथा फोटो आमंत्रित हैं।

वाणी दवे शर्मा विशेष संपादक 'घरोंदे' मो.9926005000 (email: samavartan@yahoo.com)

'ज़हर उगलती जुबानें' और 'कौन देगा जवाब' कविता पुस्तकों का लोकार्पण

राजसमन्द। गत दिनों राजस्थान साहित्य परिषद द्वारा सुप्रसिद्ध रचनाकार राधेश्याम सरावगी 'मसूदिया' की दो कविता पुस्तकों 'ज़हर उगलती जुबानें' और 'कौन देगा जवाब' का लोकार्पण 'प्रगतिशील राजस्थान' के संपादक फारूक आफरीदी के प्रमुख आतिथ्य तथा 'सम्बोधन' के पूर्व संपादक क़मर मेवाड़ी की अध्यक्षता तथा त्रिलोकी मोहन पुरोहित के विशिष्ट आतिथ्य में संपन्न हुआ। इस अवसर पर स्वागताध्यक्ष कवि, कथाकार, माधव नागदा ने संस्था की गतिविधियों पर प्रकाश डाला। मुख्य अतिथि फारूक आफरीदी ने कहा कि कवि जब अपनी कोई कविता किसी अन्य को सुनाता है तब अकेले कवि का उस कविता पर से अधिकार हट जाता है और वह सार्वजनिक हो जाती है। वह निजता के दायरे से उपर उठ जाती है और जो उस कविता को पढ़ता है या सुनता है वह उसमें अपनी निजता या अपने सरोकार तलाशता है। लोकार्पित कृतियों के रचनाकार राधेश्याम सरावगी 'मसूदिया' ने अपनी रचना प्रक्रिया पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए अपनी कुछ कविताओं का पाठ भी किया।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए भी कमर मेवाड़ी ने कवि राधेश्याम सरावगी 'मसूदिया' की सजगता एवं सक्रियाता की प्रशंसा करते हुए कहा कि उनकी कविता पाठकों के सम्मुख सवाल खड़े करती है। वे वर्तमान समय की चुनौतियों की ओर इशारा करते हैं कि हम कैसे समय में जी रहे हैं और आने वाली पीढ़ियो को विरासत में क्या देकर जाएंगे? इस अवसर पर नगर के कई साहित्यकार और सुधिजन उपस्थित थे।

प्रस्तुति : डॉ.नरेन्द्र निर्मल

मुम्बई की 'चौपाल' में 'दास्तानगोई' का रंग

चौपाल ने बाईसवें वर्ष में कदम रखा है ।युवा उम्र की ताजगी,नया करने का उत्साह,अकूंत उर्जा होनी लाजमी है।वर्ष की पहली चौपाल दिनेश जी तथा कविता गुप्ता जी के जाने-पहचाने निवास पर जमी। श्री अतुल तिवारी जी के सधे हाथों में संचालन की डोर थी।अवसर विशेष होने का एक और कारण भी था।

मध्यप्रदेश सरकार ने वरिष्ठ संगीत साधक कुलदीप सिंह जी को 'लता मंगेशकर सम्मान' से नवाजा है। फलों से लदे-फदे विनम्रता से झुके कद्धावर पेड़ की मानिंद कुलदीप जी संकोच से दोहरे हुए जा रहे थे। सभी चौपाली कुलदीप जी के इस विरल गुण को बखूबी जानते हैं। यकीनन वे आज के बड़बोले समय में दुर्लभ प्रजाति के प्राणी हैं इस सुखद सच को कौन नकार सकता है। बहरहाल कार्यक्रम की शुरूआत हस्ती जी की ताजा दम रचनाओं से हुयी जो हमेशा की तरह श्रोताओं को मंत्रबिद्ध करने में पूर्णतः सक्षम थी।

अपनी मर्जी से हम ढलानों में थे / दुनिया समझी कि इम्तिहानों में थे/ बाद में हर कोई कहता है ये तरीके तो मेरे भी ध्यान में थे/ और एक खरा किंतु खारा सच कह गए कविराज / रोटियां तो वक्त पर दे देगी मुंबई /खूब भटकाएगी खोलियों के वास्ते

फिर आए सुभाष काबरा जी अपने टट्के लिखे लेख बड़े आदमी के साथ। हास्य-व्यंग्य और चिंतन-मनन से बुने गए सटीक आखरों की सुगढ़बुनावट तथा पढने की गुरू -गंभीर भंगिमा,बरबस यज्ञ शर्मा जी का स्मरण करवा गयी। नेशनल कालेज की संध्या यादव ने पहली बार आकर और दो पंक्तियाँ पढते ही गुणी श्रोताओं को विमुग्ध कर लिया।

रद्दी अखबारों सी हो गयी है जिन्दगी/ घर में जगह नहीं मिलती बाजार में कीमत नहीं मिलती

और कविता लिखती लड़की हमेशा खतरनाक हो जाती है कविता ने तो कलेजे में टीस उठा दी।

कविता गुप्ता ने अपनी कविता पिंजरे सुनाई।

कुछ विकास के नाम पर कुछ हक के नाम पर

तथा गोरखनाथ पांडे की रचना कुर्सी पढी जो आज के संक्राति काल पर बडी सामायिक बन पडी।

चौपाल में हमेशा साहित्य व कलाओं के सतरंगे रंग सजते हैं। गजल, शेर, कविता, लेख के बाद बारी संगीत की थी।

छत्तीसगढ़ की अर्चिता भट्टाचार्य ने समां बांध दिया।लता जी की विख्यात गजल रस्में उल्फत को निभाएँ कैसे गणेश बिहारी की लिखी तथा शोभा गुर्टू जी की गायी गजल जरा दिल के करीब आओ तो चौन पड़े और अंत में बड़े गुलाम अली साहब की लोकप्रिय ठुमरी याद पिया की आयी हाय राम गाकर सरस संगीत की बरसात कर दी।

चायातंर के बाद दूसरे सत्र में जो हुआ वह दुर्लभ किस्म की बेहद खूबसूरत बानगी थी।हॉल की बतियां बुझा दी गयी।टिमटिमाते चिरागों की नीम रोशनी में गद्दे मसनद पर विराजमान थे दो दास्तानगो श्री राणाप्रताप और आशीष रावत।

सफेद झक अचकन टोपी में सजे।उन्होंने 'दास्तनगोई' की एक घंट की ऐसी प्रस्तुती पेश की कि समूचे श्रोताओं को अभिभूत कर छोड़ा। ख्याति नाम लोक कथाकार विजय दान देथा की कहानी 'चौबोली' को बड़ी खूबी से प्रस्तुत किया था। एक घंटे की प्रस्तुती में वे दोनों कहानी की जादुई भूल-भूलैया में सारे श्रोताओं को साथ लेकर ऐसे गए कि सबके कान भी आँखे बन कर चलचित्र देखने लग पड़े।

यह प्रति ध्वनी समूह की रचना थी जिसे अनुषा रिजवी ने प्रोड्यूस किया था।

अतुलजी ने 'दास्तानगोई' कला का परिचय देते हुए बताया कि अक्षरों के जन्म से भी पहले हमारे यहाँ वाचिक परम्परा तथा नाट्यपरम्परा थी।

'दास्तानगोई' ईरान व हिदुस्तान के संगम से शुरू हुयी थी। जिस तरह सत्यनारायण कथा हो या पंडवाणी सबके नियम कायदे हैं उसी तरह दास्तानगोई के भी कुछ नियम हे।यह विधा लुप्त हो गयी थी।पिछले बीस वर्षो से शम्सुरहमान फारूखी जी ने इसे फिर से जिंदा किया है ।आज 60-70 दास्तानगो तैयार हो गए हैं। नई कहानियों पर काम हो रह है। अभी दो दिन पहले ही शाहीनबाग में रोलेट ऐक्ट की दास्तान प्रस्तुत की गयी थी। इस तरह साल का आगाज बेहद खुशनुमा रहा।

निर्मला डोसी, मुम्बई, मो.9322496620

जलतरंग उपन्यास की संरचना, सैद्धांतिकी और संवेदनशीलता के विस्तार को लेकर जो श्रंखलाबद्ध चर्चाएँ हुईं, उनमें एक महत्वपूर्ण आवाज हमारे समय की सुप्रसिद्ध सितारवादिका सुश्री स्मिता नागदेव की भी थी। उनका इस विषय पर बोलना इसलिए बहुत मायने रखता है क्योंकि एक संगीतज्ञ संगीत से संबंद्ध साहित्यिक रचना पर किस तरह से 'रियेक्ट' करता है, यह जानना और समझना उन लोगों के लिए बहुत जरूरी है जो कलाओं की अंतर्निभरता और आपसदारी को बढ़ाने में अपना रचनात्मक योगदान निरन्तर दे रहे हैं।

सुश्री स्मिता नागदेव ने बहुत स्वाभाविक संकोच से कहना शुरू किया कि ''अपने मूल विषय से हटकर कुछ कहना वाकई बहुत ही मुश्किल काम है और खासकर ऐसे विषय के बारे में, साहित्य के बारे में, जब मैं देखती हूँ कि सारे ही दिग्गज साहित्यकार-लेखक यहाँ मौजूद हैं, मेरा कुछ कहने का बनता ही नहीं है। पर मैंने उपन्यास पढ़ा और उसको पढ़ने के बाद जो मेरे मन में संगीत से सम्बन्धित विचार आए हैं, मैं आपके साथ उसको शेयर करना चाहूँगी।

'जलतरंग', जैसा इस उपन्यास का शीर्षक है, यह नाम पढ़ते ही मुझे मेरे स्कूल- मॉडल स्कूल, आदर्श विद्यालय- का वो संगीत-कक्ष ध्यान आ जाता है जहाँ सबसे पहली बार, शायद मैं छठवीं क्लास में रही होऊँगी, अस्सी के दशक की बात है, पहली बार मैंने जलतरंग देखा और इतनी सुन्दर उसकी आवाज और वह इतना आकर्षित करता था, छोटे-छोटे प्याले, और बड़ी उत्सुकता होती थी, कि इसमें से कैसे आवाज निकलती है, इसको संगीत के लिए कैसे इस्तेमाल करते होंगे! चूँकि सितार की वजह से 'सा रे ग म प ध नि' सुर कान में बसे हए थे। तो डण्डियाँ लेकर मैं भी कोशिश करती थी कि इसमें 'सा रे ग म' बजाऊँ और इत्तेफाक से कभी-कभी सही भी बज जाता था। बाद में मुझे पता चला कि संतोष चौबे जी ने वहीं जलतरंग सीखा, बजाया और इत्तेफाक से उनके और मेरे गुरू- मेरे पहले गुरू जो स्व.वासुदेव राव आष्टावाले एक ही रहे हैं। ये भी एक अजीब इत्तेफाक है।

जैसा उपन्यास में मैंने पढ़ा, 'आलाप' अंक पूरा पढ़ा, कि गुरू किस तरह से शिष्य को अहम संगीत के लिए तैयार करता है। न सिर्फ संगीत बल्कि जीवन के दूसरे आयाम भी उनकी शिक्षा-दीक्षा में होते हैं। आज आपने मेरे गुरूजी की फिर से याद दिला दी। मैं रोज ही याद करती हूँ, कि वे तो कितने सशक्त व्यक्ति थे और एक सही मायनों में संगीतकार, जिन्होंने संगीत को कभी पैसे से नहीं तौला और उन्होंने ऐसे शिष्य तैयार किये हैं। उसी जमाने में उन्होंने क्लासिकल आर्केस्ट्रा तैयार किया था जिसमें जलतरंग में संतोष जी भी थे, सितार के लिए अरूण जी, वायलिन के लिए शिवलीकर जी, जो अब सभी काफी नामी-गिरामी संगीतकार हो गये। उन्होंने जो शास्त्रीय संगीत आधारित वाद्यवंद तैयार किया था, ऐसा मुझे बताया जाता है कि हर जगह कम्प्टीशन में हिस्सा लेते थे और फर्स्ट आते थे।

तो गुरू की एक बहुत बड़ी भूमिका रहती है और आष्टावाले गुरूजी मेरे लिए आदर्श रहे हैं। जो आज मैं आपके सामने, इस मंच पर खड़े होकर बोल रही हूँ, ये सब उनकी देन है। बल्कि मैं कहूँगी आष्टावाले गुरूजी ही नहीं, पूरा आष्टावाले परिवार, उन्होंने मुझे जीवन में इतने अच्छे संस्कार, आदर्श और नैतिक मूल्य दिये हैं, जिनके दम पर मैं आज दुनिया भर में अकेले जाकर भी- बहुत हिम्मत और संबल जो मुझे मिलता है वो उनके दिए इन गुणों से ही मिलता है।

इस उपन्यास को जो लेखक ने प्रत्येक भाग में विभाजित किया है संगीत के हिसाब से- आलाप, जोड़, झाला- ये सब उस कहानी के साथ एक बहुत अच्छा संवाद बनाये रखता है। संगीत की दृष्टि से भी आलाप है तो उसमें किस तरह से बढ़त हो रही है, कहानी की जोड़ है तो उस कहानी में थोड़ी-सी तीव्रता कहीं नजर आती है- इस तरीके से उसकी जो बढ़त है और नाम इतने खूबसूरत उन्होंने रखे हुए हैं।

जब मैंने पूरा उपन्यास पढ़ा, मुझे ऐसा लगता है कि वह कहानी मेरे इर्द गिर्द चल रही है। क्योंकि किरदार मुझे ऐसा लगता है कि जैसे सारे भोपाल के ही कलाकार लिये गये। नफीस खाँ साहब तबले पर, गुरू वासुदेव राव जी, म्यूजियम के चक्रवर्ती जी और नाथन। ये सब मॉडल स्कूल के तबला वादक और इस तरह के लोग रहे हैं। मुझे ऐसा लगा कि ये कहानी मेरे आसपास ही घटित हो रही है। जिस सांगीतिक सोच और समझ से इस उपन्यास को लिखा गया है, मुझे लगता है कि लेखक के अन्दर का संगीतकार, जो मन के भीतर बहुत गहरे बैठा हुआ है, उस संगीतकार को बाहर निकाल कर साहित्यकार के साथ उसका मेल जो किया है, उससे ही यह रचना सम्भव हो सकी है।

मुझे इसकी दो-तीन चीजें बहुत पसन्द आयीं। जो मैंने पढ़ी, वो मैं आपको थोड़ा-सा बताना चाहूँगी। एक तो 'विलम्बित' में इतनी सारी संगीत की जानकारियाँ दी हैं और वो इतनी सटीक और इतनी बारीक जानकारियाँ हैं, जो शायद कलाकार भी कई बार समझ नहीं पाते हैं। तानपुरे के षड्ज और पंचम को मिलाने से गान्धार की छाया आती है- ये जो उपन्यास में कहा है, यह बहुत गहरी समझ है। जब संगीत में बरसों-बरस गुजरने के बाद जो कान अनुभव करने लगते हैं, वो चीज इसमें कही गई है। इसके अलावा संगीत से सम्बन्धित सारे इतिहास ग्रन्थ और इन सारी चीजों की जो जानकारी दी गई है, मुझे लगता है कि साहित्य में कथा के साथ-साथ जिस तरह से संगीत की जानकारी, उन दोनों में लेखक ने इतने अच्छे से सामंजस्य बिठाया है कि संगीत के विद्यार्थी पढ़ें तो उनके लिए भी एक बहुत ही उपयोगी चीज हो सकती है।

मुझे उसमें अन्त में एक प्रसंग बहुत पसन्द आया कि रागमाला पेंटिंग देखने के बाद कथा-नायक संवाद करता है रागिनियों से। वो चीज भी ऐसी है कि- जैसा लेखक ने पहले ही एक जगह भी कहा है कि- संगीत सिर्फ एक राग का स्ट्रेक्चर, ताल, लय नहीं है, इससे परे, इससे ऊपर वो एक बहुत बड़ी चीज है। अनुभव की चीज है, महसूस करने की है। संगीतकार अगर संवेदनशील नहीं है तो वह उस संगीत को अपने अन्दर अनुभव नहीं कर सकता और अगर वह अनुभव नहीं करेगा तो श्रोताओं तक वो चीज नहीं पहुँच सकती। लेखक ने संगीत के मर्म को इस उपन्यास में बनाये रखा है और गहराई तक संगीत को छुआ है। वो चीज मुझे इस उपन्यास में बहुत ही आकर्षक लगी। जिस तरह झाले में तीन तिहा - तीन पल्ले लेकर अन्त करते हैं हम कहानी का, हमारे राग का, संगीत का, उसी तरह इस उपन्यास का जो अन्त है झाला का, वो उसी तरह किया गया।

चूँकि जैसा कहा गया है कि लोगों की उत्सुकता बरकरार रहे, तो मैं उस बारे में कुछ जिक्र नहीं करूँगी। लेकिन मैं उस उपन्यास को पढ़ते हुए, अन्त तक, इतना उसमें डूब गयी कि जो पहला क्लाईमेक्स है, वो मुझे एकदम अन्दर तक हिला गया। मैंने सोचा, नहीं ऐसा क्लाईमेक्स नहीं होना चाहिए। फिर दो और पढ़े, आप लोग पढ़ेंगे तो आपको पता चलेगा कि किस तरह से उस कहानी का अन्त हुआ है। लेखक ने इस उपन्यास की सारी भूमिका शास्त्रीय संगीत से ली हुई है। उसकी पृष्ठभूमि शास्त्रीय संगीत है। इस तरह के उपन्यास को लिखने के लिए बहुत उत्कृष्ट सर्जनशीलता चाहिए और संतोष जी ने यह कमाल कर दिखाया है।

तो मित्रो, यह थीं सुविज्ञ संगीतकार स्मिता नागदेव जिन्होंने एक संवेदनशील और साहित्यानुरागी मन से भरपूर कहा, जैसे उन्होंने इस बार अपने सितार को एक अलग अन्दाज से उठाया और झंकृत कर दिया हो।

आप सभी का आभार और आज का अंतिम नमस्कार।

मुकेश वर्मा
मोबाइलः 94250-14166

GOVERNMENT OF GUJARAT ANNOUNCES
COMPREHENSIVE AGRO BUSINESS POLICY (2016-21)

Agriculture, Farmers welfare & co-operation Department Gujarat

CAPITAL INVESTMENT SUBSIDY

- 25% of eligible cost of Agro & Food Processing Industries subject to maximum Rs.50.00 lakhs.
- 25% of eligible cost of Cold Chain, Food Irradiation Processing Plants and Pack Houses subject to maximum Rs.500.00 lakhs.
- 25% of eligible cost of Primary Processing Centers/Collection Centers in Rural Areas subject to maximum Rs.250.00 lakhs
- 25% of eligible cost of Reefer Van subject to maximum Rs.50.00 lakhs.

Shri Vijay Rupani
Hon'ble Chief Minister, Gujarat

BACK ENDED INTEREST SUBSIDY ON TERM LOAN

- 7.5% for Agro and Food Processing Units subject to maximum Rs.150.00 lakhs for a period of five years.
- 7.5% for Agro and Food Infrastructural Projects subject to Maximum Rs.400.00 lakhs for a period of five years.
- 1% Additional for SC/ST,Physically Challenged and Woman Entrepreneurs
- 1% Additional for Young Entrepreneurs (Below 35 years)

AIR / SEA FREIGHT SUBSIDY

- Air & Sea Freight Subsidy for MSME @ 25% of freight paid upto Rs. 10.00 lakhs per years. 40% for organic produce subject to maximum Rs.15.00 lakhs per years.

OTHER SCHEME

- Quality Certification Mark
- Skill Enhancement
- Reimbursement of VAT
- Incentive on Power Tariff and Electricity Duty
- Registration/Stamp Duty Concession

Vision World Academy

श्री नरेन्द्रभाई मोदी
प्रधानमंत्री, भारत

सत्यमेव जयते
गुजरात सरकार

माता-पिता को ही नहीं
गुजरात सरकार को भी बेटी प्यारी है

श्री विजयभाई रूपाणी
मुख्यमंत्री, गुजरात राज्य

"व्हाली दीकरी योजना"

व्हाली दीकरी योजना

बेटी को तीन किश्तों में कुल रू.एक लाख दस हजार की सहायता

* पहली कक्षा में प्रवेश के समय बेटी को रू.4000/- * नवमीं कक्षा में प्रवेश के समय रू.6000/-

* 18 वर्ष की उम्र में उच्च शिक्षा/विवाह आदि के लिए सहायता स्वरूप रू 100000/-

दिनांक : 02/08/2019 को या उसके बाद
जन्मी कन्याएं ही इस योजना के लाभ मिलने की पात्र होंगी

उद्देश्य

* कन्याओं का जन्मदर बढ़ाना
* कन्याओं का समाज में सर्वांगिण सशक्तिकरण
* कन्याओं को शिक्षा के लिए प्रोत्साहन तथा ड्राप आऊट का अनुपात कम करना
* बाल विवाह पर रोक

''कन्याओं के सशक्तिकरण हेतु राज्य सरकार कटिबद्ध''
- श्री नीतिनभाई पटेल, उपमुख्यमंत्री, गुजरात

ज्यादा जानकारी हेतु अपने जिले
के महिला एवं
बाल अधिकारी से संपर्क करें

महिला एवं बाल विकास विभाग
गुजरात सरकार

महिला विंग
महिला एवं बाल विकास विभाग
गांधीनगर, गुजरात

श्रद्धांजलि

गिरिराज किशोर

जन्म : 8 जुलाई 1937
निधन : 9 फरवरी 2020

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के दक्षिण अफ्रीका प्रवास पर आधारित उपन्यास "पहला गिरमिटिया", दलित चेतना पर 'परिशिष्ट' और 'यथा प्रस्तावित' जैसे उपन्यासों और कई कहानी संग्रहों में गाँधी वादी चेतना के औजार से हाशिए पर रहने वालों को केन्द्र में रचने का महत्त्वपूर्ण लेखन करने वाले विख्यात कथाकार तथा 'समावर्तन' के परामर्श मंडल के वरिष्ठ सदस्य पद्मश्री गिरिराज किशोर जी के निधन पर विनम्र श्रद्धांजलि.....

समावर्तन परिवार

उज्जैन, भोपाल, इन्दौर, गुना, मुम्बई, सूरत, नईदिल्ली, कोलकाता